www.thearyasamaj.org

ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 20 अक्टूबर 2013 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 20 अक्टूबर, 2013 से 26 अक्टूबर 2013

कार्तिक कृ. –02 ● वि० सं०–2070 ● वर्ष 78, अंक 78, प्रत्येक मगंलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 190 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,114 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

आर्य युवा समाज एवं उपसभा हरियाणा ने मनाया महात्मा आनन्द स्वामी जन्मोत्सव

मन की शांति और आत्मिक उन्नति के लिए आर्य समाज का सत्संग बहुत जरूरी है। इसलिए हमें रविवार को आर्य समाज मन्दिर में जाना चाहिए। अपने बच्चों को महापुरूषों के जीवन चरित्र सिखाने चाहिएँ और अच्छे–अच्छे संस्कार देने चाहिएँ। इसके लिए वैदिक धर्म सबसे अच्छा रास्ता है। ये विचार पानीपत में आयोजित महात्मा आनन्द स्वामी जन्मोत्सव पर मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित डी.ए.वी. कालेज प्रबन्धकर्तृ समिति के प्रधान श्री पूनम सूरी जी ने कहे। उन्होंने महात्मा आनन्द स्वामी को समाज का सच्चा प्रहरी और डी.ए.वी. आन्दोलन का खेवनहार व महात्मा हंसराज का परम सहयोगी बताया। स्वामी दयानन्द को विश्व गुरू बताते हुए उन्होंने आर्य समाज के इतिहास के संरक्षण पर बल दिया। श्री पूनम सूरी जी ने कहा कि वह जाति या धर्म और देश अधिक समय जीवित नहीं रहता जिसका अपना इतिहास न हो। इसलिए इतिहास की रक्षा आवश्यक है।

श्री पूनम सूरी जी ने डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल थर्मल कालोनी पानीपत में स्थापित डी.ए.वी. म्यूजियम, आरकाईव एंड रिसर्च सैंटर का उद्घाटन किया और आशा प्रकट की कि इस म्यूजियम द्वारा बच्चों को, अध्यापकों को व आर्य समाजियों को आर्य समाज के बलिदान की गाथा तथा डी.ए.वी. और आर्य समाज द्वारा किए गए योगदान का पता लगेगा।

उन्होंने संग्राहलय की प्रत्येक चीज में रूचि ली। डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर के चित्र तथा स्वामी दयानन्द के वास्तविक चित्र देखकर वे अभिभूत हो गए। सभी शहीदों का संग्रह, डी.ए.वी. के सभी प्रधानों की जानकारीयाँ और आर्य सन्यासियों व विद्वानों का संग्रह देखकर उन्होंने डॉ. धर्मदेव विद्यार्थी जी की मेहनतऔर लगन की खुले दिल से प्रशंसा की। इस मौके पर 'यज्ञ रचाओ प्रतियोगिता' में 31 विद्यालयों ने भाग लिया तथा आर्य पोस्टर बनाओ प्रतियोगिता में 25 विद्यालयों ने भाग लिया। सबको नकद पुरस्कार से सम्मानित किया गया। हरियाणा के कोने–कोने से आर्य समाजी और डी.ए.वी. का स्टाफ उपस्थित था तथा आर्य प्रादेशिक सभा के महामंत्री श्री एस.के शर्मा, सहमंत्री श्री सतपाल आर्य तथा डी.ए.वी. कमेटी के सचिव श्री रविन्द्र कुमार, कोषाध्यक्ष श्री महेश चोपड़ा, श्री आर.के. सेठी तथा निदेशिका श्रीमती जे. काकड़िया सहित अनेक क्षेत्रीय निदेशक और बड़ी संख्या में प्राचार्यगण उपस्थित थे। सभी अधिकारियों ने महात्मा आनन्द स्वामी जी के जीवन से प्रेरणा लेने का संकल्प लिया और डी.ए.वी म्यूजियम को डी.ए.वी. और देश की शान बता कर भूरी–भूरी प्रशंसा की।

डी.ए.वी. कॉलेज व आर्य समाज फिरोज़पुर शहर ने स्वामी विरजानन्द जी की पुण्यतिथि मनायी

डी.ए.वी. कॉलेज फॉर वूमेन, फिरोज़पुर कैंट और आर्य समाज फिरोज़पुर शहर ने मिलकर, श्रद्धेय स्वामी विरजानन्द जी पुण्य तिथि मनायी। इस अवसर पर कॉलेज की छात्राओं में स्वामी विरजानन्द जी के जीवन दर्शन', 'महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन में विरजानन्द जी के प्रभाव एवम् योगदान' और 'आर्य समाज का वास्तविक उद्देश्य' के विषयों पर प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता, निबन्ध लेखन प्रतियोगिता तथा कविता लेखन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। 18 सितम्बर को कॉलेज प्रांगण में स्वामी विरजानन्द जी स्मृति में विशेष हवन आयोजित किया गया। श्री सुनील शास्त्री ने वैदिक मंत्रोच्चारण से यज्ञ सम्पन्न किया। उन्होंने स्वामी विरजानन्द जी के जीवन पर विस्तार से प्रकाश डाला। प्रिंसिपल डॉ. पुष्पिंदर वालिया ने छात्राओं को संबोधित करते हुए कहा कि गुरु विरजानन्द ने दयानन्द को महर्षि दयानन्द सरस्वती बनाया और महर्षि दयानन्द ने गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए पूरे भारतवर्ष को वेदमार्ग दिखाया। हवन के सम्पन्न होने के उपरान्त प्रतियोगिताओं में विजेता रही छात्राओं को प्रिंसिपल डॉ. वालिया व श्री पवन कुमार शर्मा के द्वारा पुरस्कृत किया गया। इस यज्ञ में समस्त स्टाफ व छात्राओं ने भाग लिया।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

www.thearyasamaj.org

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 20 अक्टूबर, 2013 से 26 अक्टूबर, 2013

क्रव्यात् अग्नि दूर हो

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

यत् कृष्ते यद् वनुते, यच्च वस्नेन विन्दते।
सर्व मर्त्यस्य तन्नस्ति, कव्याच्चेदनिराहितः।।

अथर्व12.2.36

ऋषिः **मेधातिथिः**। देवता **विष्णुः**। छन्दः **त्रिष्टुप्**।

● **(यत्)** जो **(कृषते)** खेती–बाड़ी से प्राप्त करता है, **(यत्)** जो **(वनुते)** [भिक्षा–वृत्ति से या पितृधन आदि के रूप में] मांगकर प्राप्त करता है, **(यत् च)** और जो **(वस्नेन)** मूल्य से **(विन्दते)** प्राप्त करता है, **(मर्त्यस्य)** मनुष्य का **(तत् सर्व)** वह सब **(नास्ति)** नहीं रहता, **(चेत)** यदि **(क्रव्यात)** मांसभक्षी चिताग्नि **(अनिराहितः)** निष्कासित नहीं किया जाता।

● मनुष्य खेती–बाड़ी करता है। भूमि सस्य–श्यामला हो जाती है। फसल पकती है, कटती है, अन्नागारों में भरी जाती है। कृषक को ऐश्वर्यवान् कर देती है। अनेक साधनों में से यह कृषि ऐश्वर्यशाली बनने का एक साधन है। इसके अतिरिक्त मांगने से, भिक्षावृत्ति से भी, ऐश्वर्य प्राप्त होता है। ब्रह्मचारी भिक्षावृत्ति से निर्वाह करता है, आचार्य भिक्षावृत्ति से शिक्षणालय चलाता है, संन्यासी भिक्षावृत्ति से जीवन–यापन करता है। संस्थाएँ भिक्षावृत्ति से चलति हैं, लोकोपयोगी सेवा–कार्य भिक्षावृत्ति चलते हैं। मनुष्य को पितृधन आदि के रूप में भी भिक्षा मिलती है। इस प्रकार मांगना भी ऐश्वर्य–प्राप्ति का एक साधन है। जो मनुष्य धनी होते हैं, जिनके पास उपभोग के लिए पर्याप्त द्रव्य होता है, वे मूल्य से क्रय करके भी ऐश्वर्य उपार्जित करते हैं, साज–समान से सुसज्जित बड़ी–बड़ी कोठियाँ खड़ी कर लेते हैं, रथ–बग्घी, बाग–बगीचे, कल–कारखाने खड़े कर लेते हैं।

चाहे कृषि से प्राप्त ऐश्वर्य हो, चाहे भिक्षावृत्ति से प्राप्त ऐश्वर्य हो, चाहे मूल्य से खरीदा हुआ ऐश्वर्य हो, चाहे अन्य किसी साधना से प्रयत्नपूर्वक जुटाया गया ऐश्वर्य हो, सब एक क्षण में समाप्त हो जाता है, यदि अकाल मृत्यु आकर मनुष्य को कवलित कर लेती है। अतः, राष्ट्र से अकाल मृत्यु दूर होनी चाहिए। ये जो श्मशान में शिशुओं की, कुमारों की, नवयुवकों की, पूर्ण आयु से पूर्व ही मृत हो गये अन्य नर–नारियों की शवभक्षी चिताग्नि के क्रन्दनकारी दृश्य दिखाई देते हैं, वे समाप्त होने चाहिएँ। देश का प्रत्येक मनुष्य चिरजीवी हो, स्वस्थ रहता हुआ शत वर्ष या शत वर्ष से भी अधिक आयु को प्राप्त करे, इसका प्रयास होना चाहिए। यह प्रयास वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रिय तीनों स्तरों पर हो तो पर्याप्त अंशों में हम 'क्रव्यात् अग्नि' अर्थात् मांसभक्षी चिताग्नि को देश से निष्कासित कर सकते हैं। वैयक्तिक रूप से हम स्वास्थ्य के नियमों का पालन करें, उचित आहार–विहार रखें, सामाजिक और राष्ट्रिय रूप में चिकित्सा–साधनों एव चिकित्सा–शिक्षा आदि को सुलभ करायें।

आओ, हम सब मिलकर 'क्रव्यात् अग्नि' को निराहित करें, गलहट्‌था देकर राष्ट्र–भूमि से निष्कासित करें तथा विविध साधनों से उपार्जित ऐश्वर्यों का चिरकाल तक संयम–पूर्वक वेद–विहित रीति से उपभोग करते रहें। ❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

तत्त्व-ज्ञान

● महात्मा आनन्द स्वामी

पिछले अंक में 'तत्वज्ञान' का दूसरा अध्याय आरम्भ हुआ था जिसका शीर्षक स्वामी जी ने 'हृदय की पुकार' रखा। इसके अन्तर्गत "वासना क्षय और मन" से बात शुरू हुई। दीपक, तेल और बत्ती का उदाहरण देकर बताया गया कि वासना क्षय क्या होता है। यम–नचिकेता के संवाद तथा यजुर्वेद, अथर्ववेद से उद्धरण देकर मन के स्वरूप को स्पष्ट किया। मन का स्थिर होना बड़ी समस्या है। मन द्वारा किसी वस्तु का ग्रहण मात्र होने से वासनायें बन जाती हैं। मन ने ग्रहण करने से रुकना नहीं और वासनाओं का अन्त होना नहीं। तो क्या निराश हो जायें? नहीं।

मन को कहो, भैय्या तुमने तो किसी वस्तु का ग्रहण करना ही है, तब नाशवान् वस्तुओं को क्यों पकड़ते हो? उस अविनाशी, शुद्ध, बुद्ध, निर्मल, ब्रह्मतत्त्व को ग्रहण करके जिसके ग्रहण करने के बाद शेष कुछ भी ग्रहण करने योग्य नहीं रहना। यह पांच भूतों की सृष्टि है और कुछ भी नहीं। यह अभी है, अभी इसका रूपान्तर हो जायेगा।

सांसारिक सम्बन्ध झूठे तो नहीं परन्तु सदा रहने वाले नहीं। बस यही बात समझ लेनी है। केनोपषिद् ने तो मन को ईश्वर की बहुमूल्य देन बताया है तो इसे बुरा क्यों कहें, इससे भयभीत क्यों हों? मन विद्युत् की भांति एक शक्तिशाली अन्तः इन्द्रिय है। जैसे विद्युत् से कल्याण और संहार के कार्य किये जा सकते हैं ऐसे ही मन द्वारा मनुष्य जीवन के परमोद्देश्य मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं। मन एक शक्ति है जिधर चाहो लगा लो–

अब आगे

बिजली और मन

विद्युत् चंचल है। मन उससे कहीं अधिक चंचल है। आकाश में विद्युत् की चमक देखी जाती है। मन की क्रिया तो इतनी तीव्र होती है कि इसका समझना अत्यन्त कठिन हो जाता है। मेघों की विद्युत् से तो भौतिक विज्ञानी अभी कोई काम नहीं ले सके, हाँ, अपनी बुद्धि द्वारा जो विद्युत् उन्होंने उत्पन्न की है उससे कितने ही कार्य मनुष्य ले रहा है। बम्बई, कलकत्ता आदि नगरों में नीचे से ऊपर मकान की छठी–सातवीं छत पर जाना हो तो विद्युत् द्वारा आप बिना परिश्रम के पहुँच जाते हैं। यही विद्युत् पंखे चलाती है, बड़े–बड़े कारखानों में मशीनों को चलाती है और फिर आपके लिए अनेक वस्तुएँ तैयार करती है। रात्रि का सूर्य न होने पर दिन–जैसा प्रकाश कर देती है। बम्बई में तो रेलगाड़ियाँ भी यही धकेलकर ले जाती है। क्यों? विद्युत् को मनुष्य के द्वारा अपनी बुद्धि से बाँध दिया जाता है और उसे अपनी दासी बनाकर उससे सारी सेवाएँ ले ली हैं।

मन तो विद्युत् से भी अधिक शक्ति तथा बलवाला है। यदि इसे भी बुद्धि द्वारा बाँध दिया जाए, तो कौन–सा आपका मनोरथ है, जिसे यह पूर्ण न कर देगा? परन्तु यह न भूल जाना कि यदि विद्युत् बेकाबू हो जाए, तो फिर वह बड़ी–बड़ी अट्टालिकाएँ, विशाल भवन भस्मीभूत भी कर देती है; मनुष्य–शरीर को भी राख का ढेर बना देती है। इसी प्रकार विवश हुआ मन इससे भी अधिक हानि पहुँचा देता है। इतना शक्तिशाली मन यदि आपके अधीन हो जाय, तो भगवान् के साक्षात् दर्शन तत्काल हो जाते हैं।

मन के सम्बन्ध में मुनि वसिष्ठ कहते हैं:

शास्त्रसत्संगधीरेण चिन्तातप्तमतापिना।
छिन्धि त्वमयसेनायसो मनसैव मनो मुने।। 5।।

'हे मुने! आप चिन्ता–रूपी अग्नि में तपाए गए मन–रूपी लोहे को शास्त्राभ्यास और सत्संग से धीर तथा सन्तापरहित मन–रूपी लोहे के शस्त्र से काट डालिए।'

अयत्नेन यथा बाल इतश्चेतश्च योजते।
भावेस्तथैव चेतोऽन्तः किमिवाऽत्राऽस्ति दुष्करम्।। 6।।

योग वा., उत्पत्ति प्र., सर्ग 111।।

'जैसे बालक लाड़–प्यार और भय से किसी प्रयत्न के बिना इधर उधर जहाँ चाहो वहाँ लगाया जा सकता है, वैसे ही चित्त भी शम–दम आदि उपायों से जिधर चाहो उधर लगाया जा सकता है, इसलिए चित्त पर विजय प्राप्त करने में कौन–सी कठिनाई है!'

परन्तु शास्त्र पढ़ते और सत्संग करते वर्षों व्यतीत हो जाते हैं, फिर भी चित्त या मन भटकता ही रहता है। तब मन कैसे वश में हो? यह भारी प्रश्न पुनः सामने आ जाता है। बाहर की तो किसी भी शक्ति का मन–पर अधिकार नहीं हो सकता; शरीर के अन्दर ही कोई ऐसा साधन तलाश करना होगा जो मन को वश में कराने में

सहायक हो सके।

प्राण की शक्ति

मनुष्य–शरीर में जीवात्मा के अतिरिक्त पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और ग्यारहवाँ मन है। यह सब इन्द्रियों का कमाण्डर है। जीवात्मा बेचारा तो मन के जाल में फँसा हुआ है, अतएव न दस इन्द्रियाँ और न ही जीव मन को वश करने में सहायता देंगे! परन्तु इस सारी सेना के अतिरिक्त एक और वस्तु भी शरीर में है, जिसके बिना न जीवात्मा शरीर में रह सकता है, न ही मन कुछ कर सकता है, न ही इन्द्रियाँ। नेत्र देखने में भी अन्धे हो जाते हैं, कान भी छिद्र–मात्र रह जाते हैं। नासिका में चाहे जितना इत्र उँडेल दो वह सूँघ ही नहीं सकेगी। रसना न खट्टा, न मीठा, न कड़वा, कुछ भी चख नहीं सकेगी जब वह शक्ति शरीर से बाहर हो जाएगी। इस शक्ति का नाम प्राण है। यह जो श्वास–प्रश्वास शरीर में आते–जाते हैं, जो न दिन को, न रात को, न जाग्रत में, न स्वप्न में विश्राम करते हैं, चलते ही रहते हैं; गर्भकाल से लेकर तब तक चलते रहते हैं जब तक ये मृत्यु समय शरीर से निकल नहीं जाते। इसका अपना और कोई विषय नहीं, कोई स्वार्थ नहीं। सारे शरीर में यदि कोई निष्काम सेवक है, दूसरों के लाभार्थ अनथक कार्य करने वाला है तो वह प्राण ही है। इसलिए प्राण को शरीर में सर्वश्रेष्ठ कहा गया है :

छान्दोग्योपनिषद् में कहा है :

प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च।। छान्दो. प्र. 5।1।1।।

छान्दोग्य के इसी स्थल पर यह सिद्ध करने के लिए कि प्राण सबसे मुख्य और सर्वश्रेष्ठ है, प्राण और इन्द्रियों के झगड़े की आख्यायिका लिखी है। क्या हुआ? एक दिन इन्द्रियों में से वाणी, नेत्र, श्रोत्र इत्यादि ने यह दावा किया कि हम सबसे बड़े हैं; यह शरीर हमारे कारण से है। प्राण ने भी ऐसा ही कहा। अब इस झगड़े का निपटारा कहा– हमारा फैसला करो कि हममें से श्रेष्ठ कौन है?

प्रजापति ने उत्तर में कहा :

"यस्मिन् व उत्क्रान्ते शरीरं पापिष्ठतरमिव दृश्यते

स वः श्रेष्ठ इति।। छान्दो. 5।1।7।।

"अर्थात् तुमसें से जिनके निकल जाने पर यह शरीर बुरा सा दिखाई दे, वह तुममें श्रेष्ठ है।"

इस फैसले को सुनकर वाणी शरीर से निकल गई, शरीर गूँगे की तरह जीवित रहा। नेत्र चले गए, शरीर अन्धे की तरह जीवित रहा। श्रोत्र गया, परन्तु शरीर बहरे की भाँति स्थिर रहा। मन चला गया, शरीर शिशुवत् जीवित रहा। परन्तु जब प्राण जाने लगे तो सारा शरीर मृतवत् होने लगा। तब सारी इन्द्रियों ने एकस्वर होकर प्राण से कहा :

भगवन्नेधि, त्व नः श्रेष्ठोऽसि, मोत्क्रमीरिति।। छान्दो. प्र.।1।12।।

"भगवन्! तुम ही हमारे स्वामी, तुम ही हममें से श्रेष्ठ हो, बाहर मत निकलो।

निस्सन्देह प्राण के आश्रय से ही ये सारे इन्द्रिय हैं और अन्तः इन्द्रिय मन भी उसी के आश्रय में है। वाणी, नेत्र, श्रोत्र, मन इत्यादि इन्द्रियों की स्थिति प्राण ही के अधीन है। प्राण की शक्ति तो इतनी महान् है, मगर इसका अपना कोई स्वार्थ नहीं; अन्न मिलता चला जाए और यह चलता रहेगा, एक क्षण के लिए भी नहीं रुकेगा। हाँ, उस समय तक नहीं रुकेगा जब तक मृत्यु नहीं आ जाती। अन्नं वै प्राणः = प्र+अन, अप+अन=अपान। अतएव अन्न से प्राण चलता है।

नारद और सनत्कुमार का संवाद

छान्दोग्य के सातवें प्रपाठक में प्राण की एक और भी अधिक तथा सुन्दर महिमा प्रकट की गई है। नारद सनत्कुमार के पास शिक्षा लेने पहुँचा तो सनत्कुमार ने उससे पूछा– "जो कुछ तुम जानते हो पहले मुझे बताओ, ताकि उससे आगे की शिक्षा दे सकूँ।"

इसके उत्तर में नारद ने कहा– "मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद पढ़ चुका हूँ। पुराण, व्याकरण, गणित–शास्त्र, उत्पत्ति–ज्ञान–शास्त्र, निरुक्त, शिक्षा, कल्प और छन्द पढ़ चुका हूँ। तर्क–शास्त्र, नीति–शास्त्र, भूत–विद्या, धनुर्वेद, ज्योतिष, सर्व–विद्या, देवजन–विद्या, नृत्य, गान, शिल्प और विज्ञान पढ़ा चुका हूँ!" यह सुनकर सनत्कुमार ने कहा– जिसने इतना कुछ पढ़ लिया हो उसके लिए अब जानने योग्य शेष भला क्या रह जाता है? परन्तु नारद जी ने स्वयं ही यह रहस्य खोल दिया और कहने लगे– "हे भगवन्! मैं केवल मन्त्रों का जानता हूँ, आत्मा को नहीं। (वेद ने भी तो यही कहा है– 'यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति' (जो उसे नहीं जानता, वह ऋचा से क्या करेगा?) और मुझे यह बताया गया है कि जो आत्मा को जान लेता है, वह शोक से परे हो जाता है। सो हे भगवन्! मैं शोक में हूँ। आप मुझे शोक से पार करें।"

तब सनत्कुमार ने कहा– "जो कुछ तुमने यह पढ़ा है, वह केवल नाम है। नाम ही यह सब–कुछ है जिसका नाम तुमने लिया है। यह सब नाम ही है; नाम की ही तुम उपासना। वह जो नाम की ब्रह्म के तौर पर उपासना करता है जहाँ तक नाम की पहुँच है, वहाँ तक इसकी इच्छानुसार होता है।"

नारद कहने लगा– "क्या नाम से बढ़कर कोई वस्तु है?" और जब सनत्कुमार ने कहा– "हाँ, नाम से बढ़कर है।" तब नारद ने कहा– "वह बताईये।"

सनत्कुमार ने कहा– "वाणी नाम से बढ़कर है। यह वाणी ही है जो वेद तथा दूसरी सारी विद्याओं तथा सारे तत्त्वों और वस्तुओं को जतलाती है। वाणी ही हमें सब–कुछ समझाती है। इस वाणी की उपासना करो।"

नारद ने पूछा– "वाणी से बढ़कर क्या है?"

सनत्कुमार बोले– "मन वाणी से बढ़कर है, क्योंकि मन के द्वारा वाणी तथा नाम अनुभव होता है; जब मन में कोई विचार आता है, तब कर्म करता है। आत्मा भी मन के साधन से भोग भोगता है। मन ही लोक का प्राप्ति की साधन है और मन ही ब्रह्म की प्राप्ति का साधन भी है।" नारद ने पूछा– "क्या मन से भी बढ़कर कोई है?" सनत्कुमार बोले– "हाँ, संकल्प मन से बढ़कर है, क्योंकि संकल्प के पश्चात् ही विचार आता है। मन से लेकर कर्म–पर्यन्त का संकल्प एक आश्रय (केन्द्र) है। द्यौ और पृथिवी मानो संकल्पवाले हैं। वायु और आकाश से भी संकल्प बड़े सामर्थ्यवाला है, सो तुम संकल्प की उपासना करो।" नारद जी ने कहा– "हे भगवन्! क्या संकल्प से बढ़कर भी कोई वस्तु है?" सनत्कुमार ने कहा– "हाँ, संकल्प से बढ़कर 'चित्त है। जब कोई मनुष्य सोचता है, तब यह उस काम के करने या न करने का संकल्प करता है और फिर आगे प्रेरणा चलती है। चित्त ही सारे विचारों, संकल्पों, कर्मों का केन्द्र है। तुम चित्त की उपासना करो।" नारद बोले– "भगवन्! क्या चित्त से बढ़कर भी कोई वस्तु है? सनत्कुमार ने कहा– "हाँ, ध्यान चित्त से भी बढ़कर है। यह पृथिवी मानो ध्यान में लगी हुई है। यह आन्तरिक, द्यौ, जल और पर्वत ध्यान में लगे हैं; देवता और मनुष्य भी। इसलिए वे लोग जो यहाँ मनुष्यों में से (धन, विद्या वा गुणों द्वारा) महत्व को प्राप्त होते हैं, तो वे ध्यान के फल का कुछ भाग लिए प्रतीत होते हैं। वे शान्त और गम्भीर नज़र आते हैं। सो तुम ध्यान को की उपासना करो।" नारद बोले– "भगवन्! ध्यान से बढ़कर भी कुछ है। सनत्कुमार ने कहा– "हाँ, विज्ञान ध्यान से बढ़कर है। विज्ञान द्वारा मनुष्य सारे वेदों तथा सारे भूतों और भौतिक ज्ञान को जानता है। जब वह किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करेगा, तभी उस पर ध्यान जाएगा। ध्यान से विज्ञान इसलिए बढ़कर है। तुम विज्ञान की उपासना करो।" नारद बोले– "विज्ञान से बढ़कर भी कुछ है? सनत्कुमार ने उत्तर दिया– "हाँ, बल विज्ञान से बढ़कर है। बलवाला पुरुष उद्योगी बन जाता है; उद्योगी सबका प्यारा बनता है। बल से पृथिवी मर्यादा में खड़ी है। बल से मनुष्य, पशु, सब लोक खड़े हैं। सो तुम बल का उपासो।" नारद बोले– "महाराज! बल से भी बढ़कर कुछ है?" सनत्कुमार ने कहा– "हा, बल से अन्न बढ़कर है। बल अन्न से ही आता है। कुछ दिन कुछ न खाओ तो बल क्षीण हो जाता है। तो तुम अन्न को की उपासना करो।" नारद बोले– "और क्या भगवन्! अन्न से बढ़कर भी कुछ है?" सनत्कुमार ने कहा– "हाँ, नारद, जल अन्न से बढ़कर है। जब अच्छी वृष्टि न हो तो अन्न पूरा नहीं होता। अन्न जल ही से होता है। सो तुम जल की उपासना करो।" नारद बोले– "जल से बढ़कर क्या है?" सनत्कुमार ने कहा– "तेज जल से बढ़कर है। जब गर्मी पड़ती है, तभी जल बरसता है। तेज जलों को रचता है। मेघ से पहले तेज बिजली के रूप में प्रकट होता है, सो तुम तेज की उपासना करो।" नारद बोले– "क्या भगवन्! तेज से बढ़कर भी कुछ है। यह सूर्य, चन्द्र, बिजली, नक्षत्र, अग्नि, सब आकाश में स्थित हैं। आकाश के द्वारा मनुष्य बोलता है। बीज का अंकुर आकाश की ओर उत्पन्न होता है, नीचे की ओर नहीं। सो तुम आकाश की उपासना करो।" नारद ने पूछा– "भगवन्! आकाश से बढ़कर भी क्या कुछ है?" सनत्कुमार बोले– "हाँ, स्मृति आकाश से बढ़कर है, क्योंकि यदि आकाश में शब्द हो और उसे स्मरण न रखा जा सके तो कोई भी व्यवहार न चले। जब शब्द स्मरण रखे जा सकते हैं, तभी हम जान सकते, मान सकते और कुछ कर सकते हैं। स्मृति द्वारा ही पुत्रों को, पशुओं को, और एक–दूसरे को लोग जानते हैं। सो तुम स्मृति की उपासना करो। नारद बोले– "स्मृति से बढ़कर क्या है? सनत्कुमार ने कहा– "आशा स्मृति से बढ़कर है। आशा से चमकी हुई स्मृति मन्त्रों को पढ़ती है, कर्म (यज्ञादि) करती है। पुत्र वा पशुओं की इच्छा करती है। इस लोक तथा उस लोक को चाहती है। सो तुम आशा की उपासना करो।" नारद बोले– "आशा से बढ़कर भी कुछ है?" सनत्कुमार ने कहा– "हाँ, आशा से बढ़कर प्राण है। जैसे रथ की नाभि में अरे पिरोए होते हैं, इसी प्रकार यह सब (नाम से लेकर आशा–पर्यन्त) इस प्राण में पिरोया हुआ है। प्राण, प्राण से चलता है। प्राण पिता है, प्राण माता है, प्राण भ्राता और बहिन है। यही आचार्य है। प्राण ब्राह्मण है, क्योंकि यदि कोई मनुष्य माता–पिता, भाई–बहिन या आचार्य को कुछ अनुचित–सा कह दे तो लोग उसे धिक्कारते हैं कि तूने पिता की या माता की या भगिनी, भाई, आचार्य की हत्या कर दी है। तूने ब्राह्मण–हत्या कर दी। परन्तु जब उसके प्राण निकल जातें है तब चाहे कोई उन्हें जला दे, तब उसे कोई नहीं कहेगा कि तूने पिता, माता, भाई, आचार्य या ब्राह्मण की हत्या की है। इसलिए प्राण ये सब माता–पिता इत्यादि हैं। यह सारा जंगम–स्थावर जो कुछ है, सब प्राण हैं।"

बस, इसके पश्चात् नारद ने आगे प्रश्न नहीं पूछा। प्राण पर पहुँचकर वह सन्तुष्ट हो गया। नाम से लेकर वाणी, मन, संकल्प, चित्त, ध्यान, विज्ञान, बल, अन्न, जल, तेज, आकाश, स्मृति आशा, प्राण को सनत्कुमार जी ने क्रमानुसार अधिक बलवान् तथा श्रेष्ठ बतलाया।

शेष पृष्ठ 5 पर ☞

www.thearyasamaj.org

वार्षिकोत्सव पर पुलिस की रेड और सत्यार्थ प्रकाश उठा ले गए

● प्रो. उमाकान्त उपाध्याय

1985 ई. में आर्य समाज कलकत्ता की शताब्दी बड़े धूम–धाम से मनायी गई। कोलकाता के प्रसिद्ध परेड ग्राउण्ड में शताब्दी का यह उत्सव कोलकाता के लिए अभूतपूर्व हुआ था। कोलकाता के मुसलमानों ने उस शताब्दी पर चार बार पुलिस की रेड करवाई थी किन्तु कोई आपत्तिजनक पुस्तक या सामग्री न मिलने से मुसलमानों के नेताओं में बड़ी खीझ थी। दूसरे वर्ष 1986 ई. में सदा की तरह दिसम्बर के महीने के अन्तिम दिनों में 9 दिनों का वार्षिकोत्सव बड़ी सज–धज से मोहम्मद अली पार्क में मनाया जा रहा था। शताब्दी पर पुलिस की रेड इसलिए भी विफल हो गई कि वहाँ रात–दिन हजारों व्यक्तियों का मेला लगा रहता था। इस अनुभव से शिक्षा लेकर सन् 1986 ई. में अपराह्न के समय पुलिस ने छापा मारा था।

मोहम्मद अली पार्क कहने को ही मोहम्मद अली नहीं है, इस पार्क के चारों ओर मुसलमानों की सघन बस्तियाँ हैं। कोलकाता की बड़ी मस्जिद प्रसिद्ध जामा मस्जिद पार्क से पैदल 5 मिनट की दूरी पर चितपुर रोड पर है। मस्जिद से निकलने पर सौ–पचास कदम चलने पर पार्क से माइक की आवाज सुनाई पड़ने लगती थी। उस समय आज की तरह माइक पर कोई प्रतिबन्ध न था। अतः मुसलमानी पाढ़ों में प्रातः यज्ञ पर वेद मंत्रों की ध्वनि और अपराह्न भजन और व्याख्यान की आवाज घरों में बैठे–बैठे सुनाई पड़ती थी। कट्टर मुसलमानों में विरोध और खीझ की भावना बनी रहती थी।

आर्य समाज कलकत्ता में स्त्री समाज का साप्ताहिक सत्संग प्रत्येक बुधवार को अपराह्ण 3–4 बजे होता रहता है। वार्षिकोत्सव के अवसर पर भी बुधवार को अपराह्ण में बुधवार के दिन 3–6 बजे तक महिला सम्मेलन मनाया जाता है। आज भी यही नियम चलता है। सन् 1986 के वार्षिकोत्सव में बुधवार के दिन महिला सम्मेलन मनाया जा रहा था। महिला सम्मेलन में सुरक्षा और व्यवस्था की दृष्टि से 15–20 पुरुष पुस्तक विक्रेता तो अपनी–अपनी पुस्तकों की दुकानें खोल देते हैं किन्तु संख्या की दृष्टि से पुरुष बहुत कम रहते हैं।

मुसलमानों की ओर से कोलकाता महानगर के मुख्य हेड क्वार्टर (प्रधान कार्यालय) लाल बाजार से मुसलमानों की ओर से उच्च अधिकार सम्पन्न राजनीतिक और धार्मिक नेताओं ने पुलिस कमिश्नर के यहाँ यह शिकायत कर रखी थी कि स्वामी दयानन्द सरस्वती के द्वारा लिखी हुई पुस्तक **'सत्यार्थ प्रकाश'** एक प्रतिबंधित (Banned) पुस्तक है। कमिश्नर ने बिना कोई जाँच पड़ताल किए वह शिकायत स्थानीय ओ.सी. (O.C.) को भेज दी। शिकायत इतने सबल और ऊँचे सूत्र से थी कि ओ.सी. ने कार्यवाही करना अनिवार्य समझा। ओ.सी. स्वयं भी मुसलमान थे, शायद उनके मन में भी मजहबी भावना काम कर रही हो तो कोई आश्चर्य नहीं। बुधवार के दिन अपराह्न में केवल स्त्रियाँ होती हैं, भीड़ कम होती है और पुस्तकों की दुकानें खुली रहती हैं। इस सुयोग का लाभ उठाकर ओ.सी. ने दस–बारह पुलिस के साथ पार्क में पुस्तकों की दुकानों पर छापा मारा और सत्यार्थ प्रकाश की जो भी प्रतियाँ हिन्दी, बंगला, उर्दू में उन्हें मिल सकी उठा ले गए। जनता में क्षोभ होना बहुत स्वाभाविक था, अधिकारियों को फोन से सूचना दी गई, हमें भी घर पर फोन आया। आधे घण्टे के अन्दर हमारे पास भी कम से कम आठ–दस फोन आ गए। हमने लोगों को सलाह दी कि हम पार्क में आ रहे हैं और उचित कार्यवाही करने पर विचार करेंगे।

संयोग से स्थानीय (M.L.A) स्वर्गीय देवकीनन्दन पोद्दार थे। श्री पोद्दार जी 3–4 पीढ़ियों के स्वयं भी आर्य समाजी परिवार के थे। कोलकाता का यह पोद्दार परिवार आर्य समाज का प्रसिद्ध सहयोगी रहा है और इस पोद्दार परिवार के 5–6 घरों में हमें व्यक्तिगत रूप से गुरु, आचार्य का सम्मान मिलता रहा है। मैंने श्री देवकीनन्दन पोद्दार को टेलीफोन किया और उन्हें सारा समाचार बता दिया। मैंने उनसे यह भी कहा कि आप पुलिस कमिश्नर को फोन करें और हमारे साथ एक शिष्ट मण्डल में आप भी हमारी सहायता के लिए पुलिस कमिश्नर के पास आर्य समाज के शिष्ट मण्डल में लाल बाजार चलें। उन्होंने पुलिस कमिश्नर से शिष्ट मण्डल के मिलने का समय ले लिया और हम चार–पाँच व्यक्ति पोद्दार जी के साथ पुलिस कमिश्नर से मिलने चले गए। स्वर्गीय देवकीनन्दन पोद्दार प्रतिष्ठित विधायक थे और वे हमारे साथ शिष्ट मण्डल में थे इस प्रकार हमारे शिष्ट मण्डल का वजन पर्याप्त बढ़ गया था।

हम जब पुलिस कमिश्नर के आफिस में पहुँचे तो उन्होंने तुरन्त ही बुला लिया और जिस ओ.सी. ने छापा मारा था वह भी वहीं थे। पुलिस कमिश्नर ने बड़े सम्मान से हमें बैठा लिया और बातचीत कुछ प्रकार आरम्भ हुई। पुलिस कमिश्नर ने पूछा– यह पुस्तक कितनी पुरानी है? हमने कहा इस पुस्तक का प्रथम संस्करण 1875 ई. में निकला था, इस प्रकार एक सौ वर्षों से पुरानी पुस्तक है और सभी प्रमुख भाषाओं में इसका अनुवाद हो गया है और आजतक कई लाख प्रतियाँ छप चुकी हैं। पुलिस कमिश्नर ने पूछा क्या पुस्तक पर कभी कोई प्रतिबंध (बैन) लगा है? हमने उत्तर दिया अंग्रेजों के राज्य में अंग्रेजों ने चेष्टा तो कई बार की किन्तु अदालतों ने सदा ही पुस्तक को प्रतिबंध के योग्य नहीं माना। अब ओ.सी. ने कहा कि सिन्ध में तो कुछ हुआ था। हमने कहा कि स्वतंत्रता मिलने के समय सिन्ध की मुस्लिम लीग सरकार ने प्रतिबंध का शोर तो मचाया था किन्तु जब आर्य समाज के नेता कराची की सड़कों पर सत्यार्थ प्रकाश की पुस्तक लेकर खुलेआम घूमने लगे तो सिन्ध सरकार ने घोषणा कर दी कि हमने तो कोई प्रतिबंध ही नहीं लगाया है। कांग्रेस की केन्द्रीय सरकार के मंत्रियों ने भी कहा कि सत्यार्थ प्रकाश पर कोई प्रतिबंध नहीं है। अब ओ.सी. ने कहा कि स्वामी जी ने आलोचना तो बड़ी कठोर की है। हमने उत्तर दिया कि स्वामी जी ही क्यों, संसार के इतिहास में चाहे हजरत मोहम्मद हों या यीसू मसीह हों, चाहे स्वामी विवेकानन्द हों, जिसने भी सुधार का काम किया है उसे बुराईयो का विरोध करना ही पड़ता है। एक भी धार्मिक नेता या सुधारक नहीं हुआ है जिसने बुराईयों का विरोध न किया हो। अब पुलिस कमिश्नर ने कहा कि क्या आप यह भरोसे से कह सकते हैं कि सत्यार्थ प्रकाश पर कभी प्रतिबंध नहीं लगा है? हमने दृढ़ता के स्वर में कहा कि हम लिखित दे सकते हैं कि इस पुस्तक पर सौ से अधिक वर्षों में संसार की किसी भी अदालत ने भारतवर्ष में, यूरोप के देशों में, अमेरिका के देशों में या इस्लामी देशों में कहीं भी प्रतिबंध नहीं लगाया है। **अब पुलिस कमिश्नर ने पूछा कि क्या सत्यार्थ प्रकाश आर्य समाज का धर्म ग्रन्थ है? मैंने कहा– हाँ, यह हमारा धर्म ग्रन्थ है। इतना कहते ही स्वर्गीय देवकीनन्दन पोद्दार बड़े बलशाली ढंग से बोले– 'चार पीढ़ियों का आर्य समाजी तो मैं हूँ और सत्यार्थ प्रकाश हमारा भी धर्म ग्रन्थ है।' (पोद्दार जी के शब्द मुझे याद हैं) पुलिस कमिश्नर का रुख नरम हो गया उसने फिर पूछा कि क्या यह आपका धर्म ग्रन्थ है? हमने उत्तर दिया हमारे सत्संगों में सत्यार्थ प्रकाश की कथा होती है, साप्ताहिक सत्संग में आर्य समाज में सत्यार्थ प्रकाश का पाठ और कथा अनिवार्य है।**

अब पुलिस कमिश्नर ने ओ.सी. से कहा कि पण्डाल से पुस्तकों का उठा लाना उचित नहीं है, पुस्तकें लौटा दो। ओ.सी. ने कहा– बहुत ऊँचे सोर्स से माँग हुई और जनता में बबेला हो जायेगा। पुलिस कमिश्नर ने कहा कि सोर्स की बात तो तुम मुझ पर छोड़ दो और जनता के बवाल की क्या चिन्ता है? नहीं माने तो उन्हें ठन्डी कर दो। अब पुलिस कमिश्नर ने कहा कि पुस्तकें उन्हें लौटा दो और हमसे बोले कि पुलिस की भूल है आप पुस्तकें ले जाइए। हमने कहा कि हम पुस्तकें पुलिस के आफिस में नहीं लेंगे। हमारी पुस्तकें हमारे पाण्डाल से उठायी गई हैं और हम अपनी जनता के बीच में बहुत अपमान का बोध कर रहे हैं। हमारी पुस्तकें हमको पण्डाल में लौटाई जाएँ और हम वहीं पार्क में पुस्तकें वापस लेंगे। ओ.सी. ने कहा कि जनता भड़क उठे तो? हमने उत्तर दिया कि जनता को शान्त अनुशासन में रखने का उत्तरदायित्व हमारा है। पुलिस कमिश्नर ने कहा कि इन्हें पुस्तकें पार्क में लौटाई जाएँ और हमें बड़े सम्मान से विदा किया। हम इस सुन्दर समाचार के साथ अपने पण्डाल में लौट आए।

सायंकाल के समय कोई साढ़े सात–आठ बजे का समय रहा होगा। सारा पण्डाल और सारा पार्क लोगों से भरा हुआ था और हमने स्टेज के ऊपर पुस्तकें वापस ली और जनता में जयघोष होने लगा। सत्यार्थ प्रकाश अमर रहे, स्वामी दयानन्द जी की जय, आर्य समाज अमर रहे।

हमने जनता को शांत किया। हम स्वयं बोल रहे थे, हमने पुलिस को धन्यवाद किया कि पुलिस फोर्स शांति सुव्यवस्था का संरक्षक है। हमने पुलिस को धर्म का रक्षक सुव्यवस्था का रक्षक कहा था। हमारा अनुमान है कि जो पुस्तकें लेकर आए थे वे सब हिन्दू समुदाय के ही थे और पीछे वे हमसे अलग से भी मिले थे और अनुकूल आश्वासन देकर गए थे।

जनता में जोश उबाल खा रहा था, बड़े जोशीले भजन उपदेश हुए और जलसे के शेष दिन बड़े उत्साह और जोश के साथ बीते।

ईशावास्यम्
पी–30, कालिन्दी
कोलकाता–700 089
फोन (033) 25222636
चलभाष : 09432301602

www.thearyasamaj.org

राम तुम्हारा चरित (वृत्त) स्वयं ही काव्य है।

● डा. भवानीलाल भारतीय

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने जब काव्य की उपेक्षिता लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला को मुख्य पात्र रखकर साकेत महाकाव्य की रचना की तो उपर्युक्त पंक्ति के द्वारा राम के गौरव तथा उच्च चरित को अपने आप में आदर्श एवं अनुकरणीय बताया था। वस्तुतः राम के जीवनवृत्त का सम्पूर्ण वृतान्त संस्कृत के आदि कवि महर्षि वाल्मीकि को ऋषि नारद ने तमसा नदी के तट पर विचरण करते हुए बताया था। इसी समय जब एक शिकारी द्वारा क्रौंच पक्षी के एक जोड़े में से एक को उन्होंने घायल होकर गिरते देखा तो उनकी करूणासिक्त वाणी एक श्लोक (**मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः**) के रूप में व्यक्त हुई। साहित्य समीक्षकों ने इसे ही मुनि के मन में क्रौंच की मृत्यु से उत्पन्न शोक को श्लोक का रूप धारण करना बताया। कालान्तर में जब वाल्मीकि ने रामायण का प्रणयन किया तो उन्होंने राम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप को प्रस्तुत करते हुए उन्हें नियतात्मा (संयमी) महावीर्य (महान् बलशाली), द्युतिमान् तथा धैर्यशाली कहा। जननी कौसल्या के आनन्द को बढ़ाने वाले राम के लिए वाल्मीकि कहते हैं–

"समुद्र इव गाम्भीर्ये : धैर्येण हिमवानिव"

ये राम समुद्र के तुल्य गम्भीर हैं और उनमें हिमालय सा धैर्य है। संक्षेप में राम आर्य आदर्श के प्रतीक हैं। वस्तुतः राम के आदर्श मानवीय चरित्र की कल्पना वाल्मीकि ने की थी। कालान्तर में जब अवतारवाद की धारणा ने जोर पकड़ा तो रामचरित को अलौकिक रूप देकर उन्हें विष्णु के अवतार के रूप में प्रख्यापित किया गया। सच तो यह है कि रामचरित को विश्व में सर्वत्र ख्याति ही नहीं मिली उसे भिन्न भिन्न शैलियों, भाषाओं, काव्यरूपों तथा कवि–लेखकों की धारणा के अनुसार चित्रित किया गया। रामकथा का ऐतिहासिक अन्वेषण करने वाले रांची के फादर कामिल बुल्के ने वैदिक के अतिरिक्त जैन तथा बौद्ध वाङ्मय में लिखी गई रामकथा का विवेचन भी किया है। दशरथ जातक में राम का बौद्ध रूप दिखाया गया है। पुराणों में भी रामकथा को स्थान मिला है, कहीं संक्षेप में, तो कहीं विस्तार से। ब्रह्माण्ड पुराण के अन्तर्गत **अध्यात्म रामायण** में रामकथा के द्वारा शंकराचार्य के अद्वैतदर्शन को प्रतिष्ठा दी गई तो **योग वासिष्ठ** में भी जीव ब्रह्म की एकता की पृष्ठ भूमि में रामकथा का विवेचन किया गया।

यदि अन्य भाषाओं और देशों में विवेचित रामकथा को एक ओर रख कर हम भारतीय वाङ्मय में राम के इतिवृत्त को देखें तो उसे बहुरंगी तथा बहुआयामी पाएँगे। केवल संस्कृत में ही राम कथा का चित्रण श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य की दोनों शैलियों में हुआ है। इन ग्रंथों में रचनाकार की अपनी मौलिक ऊहा भी दर्शनीय है। प्राचीनतम नाटककार भास ने अपने **प्रतिमानाटक** में रामकथा का चित्रण उस दृश्य से किया है जब भरत ननिहाल से लौटते हैं और महाराज दशरथ के देवलोक गमन के पश्चात् उनकी प्रतिमा को अपने पूर्वजों की प्रतिमाओं में देखते हैं। वाल्मीकि की रामकथा (रामायण) तो युद्ध काण्ड पर आकर समाप्त हो जाती है किन्तु कालान्तर में क्षेपककारों द्वारा शम्बूक वध, सीता को वनवास में भेजने, अश्वमेघ यज्ञ में राम और लवकुश का युद्ध आदि प्रसंगों का उत्तरकाण्ड की रचना कर मूलकथा में समावेश कर देना अनधिकार चेष्टा की थी। तथापि उत्तर चरित के कथानक के आधार पर महाकवि भवभूति ने **उत्तररामचरित** जैसे श्रेष्ठ नाटक की रचना की जिसमें करुण तथा हास्य का अच्छा मेल है। भवभूति ने राम के चारित्रिक आदर्श को **'व्रजादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि'** कह कर गौरवान्वित किया। समय आने पर व्रज से भी कठोर किन्तु सामान्य स्थिति से जो पुष्प से भी अधिक कोमल हैं। यही राम जब राक्षसों के विनाशार्थ अरण्य में प्रवेश करते हैं तो भुजा उठा कर प्रतिज्ञा करते हैं–

निसिचरहीन करौं मही, भुज उठाय प्रण कीन्ह।

संस्कृत के अन्यतम ऐतिहासिक महाकाव्य महाभारत में यथाप्रसंग रामकथा का चित्रण हुआ है। समीक्षकों को इसमें काल दोष तब दिखाई दिया जब हनुमान और भीम का परस्पर संवाद यहाँ वर्णित हुआ। हनुमन्नाटक की रामकथा विदग्ध चमत्कार युक्त शैली में लिखी गई है। कालान्तर में जब चमत्कार और उक्ति वैचित्र्य को ही काव्य का सर्वस्व माना जाने लगा तो **'राघवपाण्डवीयम्'** जैसे काव्य की रचना हुई। इसके प्रत्येक श्लोक की पंक्ति को सीधे से पढ़ा जाए तो उसमें रामकथा का वर्णन किया है और यदि उल्टे से पढ़ें तो कौरवपाण्डव युद्ध की कथा दिखाई देती है। बंगला में **कृत्तिवास रामायण** का प्रचलन है तो हिन्दू से ईसाई बने बंगला कवि माइकेलमधुसूदन दत्त ने **मेघनाथ वध** महाकाव्य लिखकर लंकेश्वर रावण को गौरवान्वित किया। दक्षिण भारत में कम्ब रामायण का प्रचलन है।

हिन्दी में रामकथा लेखको की लम्बी परम्परा रही है। तुलसीदास ने प्रतिज्ञापूर्वक **रामचरितमानस** की रचना की जो उनके शब्दों में **'नाना पुराण निगमागमत सम्मत'** है। उधर केशवदास की **रामचन्द्रिका** छन्द कौशल तथा अलंकार कौशल के अतिरिक्त संवादों के विचित्र समायोजन के कारण रसिक जनों का कण्ठहार बनी।

लक्ष्मण परशुराम संवाद तथा अंगद रावण संवाद आज भी रामलीलाओं में दर्शकों को प्रफुल्लित करते हैं। मैथिलीशरण गुप्त के साकेत का बाहरवाँ सर्ग उर्मिला की विरहवेदना को समर्पित है तो महाकवि हरिऔध (अयोध्यासिंह उपाध्याय) ने **वैदेही वनवास** लिखकर उत्तराकाण्ड की कथा को काव्य का रूप दिया। 'रावणवध' में मधुसूदनदत्त का अनुकरण मिलता है। इसे हरदयालुसिंह ने लिखा है। द्विवेदी काल के प्रसिद्ध कवि रामचरित उपाध्याय ने रामचरित चिन्तामणि में परिष्कृत खड़ी बोली का प्रयोग किया। निश्चय ही रामकथाओं में रामचरित मानस का अन्यतम स्थान है। **पादरी एटकिन्स** ने इसका समश्लोकी अंग्रेजी अनुवाद (चौपाई की भाँति अंग्रेजी में पठनीय) किया तो सिविल सर्विस के हिन्दी प्रेमी अंग्रेज अधिकारी **मि. ग्राउस** (कभी मथुरा में कलेक्टर रहे, ने उसे अंग्रेजी गद्य में प्रस्तुत किया।

315 शंकर कालोनी, श्रीगंगानगर

☞ *पृष्ठ 3 का शेष*

तत्त्व-ज्ञान

निस्सन्देह सारी चेष्टाएँ प्राण द्वारा होती हैं। सारा चराचर प्राण ही के अधीन है और नारद प्राण की बात सुनकर सन्तुष्ट भी हो गया; परन्तु यह सारा व्याख्यान तो भौतिक पदार्थों का है। नारद ने आत्मा की बात पूछी थी, इसीलिए सनत्कुमार ने जब देखा कि नारद अब आगे प्रश्न नहीं करता तो स्वयं सनत्कुमार जी कहने लगे कि 'वस्तुतः सत्य (ब्रह्म) को सबसे बढ़कर समझना चाहिए।' परन्तु आत्मा को छोड़कर संसार की सारी अनात्म शक्तियों में प्राण ही सबसे बढ़कर है। इतनी महान् शक्तिशाली वस्तु मनुष्य–शरीर में है और यही शक्ति आपके उद्देश्य को पूर्ण करने में सहायक हो सकती है। हाँ, यह तभी सहायक हो सकती है, यदि आप इससे तत्त्व तक पहुँचने का काम लेना चाहें। इस शक्तिशाली प्राण को प्रश्नोपनिषद् में जीवात्मा का पिता कहा गया है। जब प्राण निकलने लगे तो इन्द्रियों ने प्राण से कहा– मत निकल।

पिता त्वं मातरश्विनः। प्र. 2 । 11 ।।

'तू जीवात्मा का पिता है।'

प्राणः प्रजा अन वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् (अथर्व. 11 । 4 । 10) वेद में भी प्राण को पिता–तुल्य बताया है।

यही एक प्राण है, जिस पर विश्वास हो सकता है कि यह मन को वश में करने में सहायक हो सकेगा, क्योंकि यह न तो किसी इन्द्रिय के अधीन है, न ही आत्मा या मन के, और यह निष्काम सेवक है। जब देवताओं तथा असुरों ने एक–दूसरे पर विजय प्राप्त करने के यत्न आरम्भ किए तो असुरों ने लगभग प्रत्येक युद्धस्थल में देवताओं को पराजित कर दिया। अन्त में देवताओं ने शरीर में प्राण ही का आश्रय लिया और वहाँ असुरों की पराजय हुई। यह कथा धार्मिक वृत्तियों तथा पाप–वृत्तियों के संघर्ष का वर्णन करती है। छान्दोग्योपनिषद् प्रपाठक 1, खण्ड 2 में यह कथा इस प्रकार है :

"देवता (धार्मिक वृत्तियाँ) और असुर (पाप की वृत्तियाँ) जो दोनों प्रजापति (मनुष्य) की सन्तान हैं, ये जब आपस में एक–दूसरे पर विजय पाने के प्रयत्न में लगे, तो देवताओं ने उद्‌गीथ (ओम्) को ग्रहण किया कि इससे हम इन असुरों को दबा लेंगे। (1) उन्होंने (देवताओं ने) नासिका में होने वाले प्राण (घ्राण) की दृष्टि में ओम् की उपासना की। उस घ्राण को असुरों ने पाप से बींध दिया, इसीलिए उस घाण से मनुष्य दोनों को सूँघता है– सुगन्ध भी और दुर्गन्ध भी, क्योंकि यह घ्राण पाप से बींधा हुआ है। पाप का फल केवल दुर्गन्ध है। घ्राण यदि पाप से बींधा जाता तो वह केवल सुगन्ध ही लेता क्योंकि घ्राण की अपनी आसक्ति सुगन्ध ही में है, यही इसका स्वार्थ है। स्वार्थी होने के कारण यह पाप से बींधा गया और दुर्गन्ध भी इसके पल्ले पड़ गई। उधर देवताओं को इस मैदान से भागना पड़ा। (2) तब उन्होंने (देवताओं ने) वाणी की दृष्टि से ओम् की उपासना की, परन्तु असुरों ने उसको भी पाप से बींध दिया। इसलिए मनुष्य इससे दोनों बातें बोलता है– सत्य भी, झूठ भी, क्योंकि वाणी पाप से बींधी हुई है। (3) तब उन्होंने आँख की दृष्टि से ओम् की उपासना की, पर असुरों ने आँख को भी पाप से बींध दिया। इसलिए मनुष्य इससे दोनों बातें देखता है– देखने योग्य और न देखने योग्य। (4) तब उन्होंने श्रोत्र की दृष्टि से ओम् की उपासना की, पर असुरों ने इसको भी पाप बींध दिया। इसीलिए मनुष्य कान से दोनों बातें सुनता है– सुनने योग्य और न सुनने योग्य; पाप में बिंध जाने के कारण। (5) तब उन्होंने मन की दृष्टि से ओम् की उपासना की, पर असुरों ने मन को भी पाप से बींध दिया। इसीलिए मनुष्य उससे दोनों बातें सोचता है– सोचने योग्य और न सोचने योग्य, क्योंकि मन पाप से बींधा हुआ है। (6) (इन सब स्थानों से देवता पराजित होकर अब प्राण की शरण में जाते हैं।)

www.thearyasamaj.org

वेदाविर्भाव एवं ब्रह्मादि ऋषियों द्वारा सर्गारम्भ में वेदों का प्रचार

● मनमोहन कुमार आर्य

महर्षि दयानन्द सरस्वती के सक्रिय रूप से सार्वजनिक जीवन में पदार्पण के अवसर पर सारी दुनियां को यह तथ्य स्मरण नहीं थे कि वेदों का आविर्भाव ईश्वर के द्वारा प्राचीन व आदि ऋषियों पर कैसे हुआ? महर्षि दयानन्द ने सत्य की खोज करते हुए पाया कि ईश्वर सत्य, चित् व आनन्दस्वरूप, निराकार, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजन्मा, अविनाशी, अनादि, अमर आदि स्वरूप वाला है। ऐसे स्वरूप वाले ईश्वर से ही सारा जगत्, जिसमें सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, सभी ग्रह व उपग्रह, ब्रह्माण्ड, लोक–लोकान्तर, निहारिकाएँ व तारा समूह आदि सम्मिलित हैं, अस्तित्व में आया है। अर्थात् ईश्वर इन सबका निमित्त कारण है। बिना रचयिता के रचना कभी नहीं हुई है और न हो सकती है। इस आधार पर सृष्टि के रचयिता ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध है। संसार का कोई भी छोटे से छोटा व अच्छा कार्य बिना बुद्धि के नहीं हो सकता। इतना बड़ा ब्रह्माण्ड यदि ईश्वर ने बनाया है तो वह स्वाभाविक रूप से बुद्धि व ज्ञान का अक्षय भण्डार व खजाना है। ब्रह्माण्ड के आकार प्रकार को देखकर सिद्ध होता है। कि वह अनन्त है, अनन्त सत्ता सदैव अनादि ही होगी। स–आदि अर्थात जिनका आरम्भ हुआ है, ऐसी सत्ताएँ विनाशी व मरणधर्मा होती हैं। यदि ईश्वर को अनादि न होकर आदि अर्थात् उत्पत्तिधर्मा मानें, तो जन्म लेने व मृत्यु को प्राप्त होने वाले इस ईश्वर का जनक व पिता भी स्वीकार करना पड़ेगा जिससे अनवस्था दोष उत्पन्न होगा। अतः ईश्वर अनादि व अनन्त ही सिद्ध होता है। ज्ञानपूर्वक की गई कोई भी रचना किसी चेतन सत्ता द्वारा ही सम्भव है। यह ब्रह्माण्ड क्योंकि अनन्त है, अतः ईश्वर अक्षय ज्ञान के भण्डार के साथ सर्वशक्तिमान भी सिद्ध होता हैं। **ऐसा ईश्वर जब कोई भी प्राणधारी रचना, यथा मनुष्यों की उत्पत्ति करेगा तो उसके जीवन निर्वाह के लिए उसे स्वाभाविक व नैमित्तिक ज्ञान अवश्य ही देगा अन्यथा उस पर यह आरोप आयेगा कि वह ज्ञान देने में अक्षम है।** दूसरी ओर वह मनुष्य बिना भाषा व ज्ञान के सम्भवतः एक दिन भी जीवन यापन न कर सके। पशुओं–पक्षियों की बात और है। उन्हें ईश्वर ने इतना स्वभाविक ज्ञान दिया है कि वे अपने जीवन के सभी कार्य सरलता से कर लेते हैं। परन्तु ईश्वर ने मनुष्य में यह भेद किया है कि वह उसे प्रदत्त अल्प वा सीमित स्वाभाविक ज्ञान से अपने सभी दैनन्दिन कार्य सम्पादित नहीं कर सकते। इसके लिए नैमित्तिक ज्ञान की आवश्यकता है। यह भाषा सहित वेद का नैमित्तिक ज्ञान ईश्वर से एक गुरू के रूप में आदि सृष्टिकालीन मनुष्यों को प्राप्त होता है।

ईश्वर ने ज्ञान की प्राप्ति के लिए पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ बना कर प्रत्येक मनुष्य को दी हैं। इन इन्द्रियों की सार्थकता तभी होती है जब मनुष्य को इसके साथ भाषा का भी ज्ञान दिया जाए। वर्तमान में माता–पिता अपने शिशु को भाषा का ज्ञान देते हैं जो कि पूरी प्रक्रिया प्राकृतिक एवं प्राचीन है। आदि सृष्टि में माता–पिता तो थे नहीं, अतः माता–पिता के सभी कार्य ईश्वर ने ही सम्पादित किए। उसने सभी आदिकालीन पहली पीढ़ी के मनुष्यों को स्वाभाविक ज्ञान के साथ भाषा का ज्ञान भी प्रदान किया। वेदों के आधार पर हम जानते हैं कि ईश्वर की भाषा वैदिक संस्कृत है। **ऐसी ही भाषा का ज्ञान परमात्मा ने सभी स्त्री पुरूषों को सृष्टि के आरम्भ में दिया था। जिस प्रकार एक अन्तिम कारण होता है जिसका अन्य कोई कारण नहीं होता। उसी प्रकार यहाँ पर आदि स्त्री पुरुषों को ईश्वर ने भाषा का ज्ञान दिया यह स्वीकार करना पड़ता है। अन्य कोई विकल्प ही नहीं है।** इसकी पुष्टि इसी से होती है कि संस्कृत सर्व प्राचीन भाषा है जिसका आधार वैदिक संस्कृत है। वैदिक संस्कृत मूल भाषा है जो मनुष्यों द्वारा बनाई गई नहीं है, अपितु ईश्वर प्रेरित या दैवीय है। जिस प्रकार हम सृष्टि से पदार्थों को लेकर उनका उपयोग कर नाना प्रकार के पदार्थों को बनाते हैं। परन्तु वह मूल पदार्थ जिनका हम उपयोग करते हैं, उन्हें हम नहीं बनाते। वह ईश्वर निर्मित हैं। इसी प्रकार मूल भाषा ईश्वर से प्राप्त होती है जिसके आधार पर उसमें परिवर्तन, अपभ्रंश, देश काल आदि कारणों से समय–समय पर विकार व परिवर्तन होते रहने से मानवी भाषाएँ बनती हैं। वैदिक आर्य विद्वानों ने भाषा की उत्पत्ति व इतिहास पर विचार करते हुए यही निष्कर्ष निकाले है। ईश्वर द्वारा सभी को भाषाओं का जो ज्ञान दिया गया वह उसने जीवस्थ स्वरूप से अर्थात् प्रत्येक मनुष्य के आत्मा के भीतर उसकी उपस्थिति के होने व ईश्वर द्वारा जीवात्माओं को प्रेरणा द्वारा दिया गया। जिस प्रकार हम परस्पर वाणी व भाषा द्वारा एक दूसरे को प्रेरित करते हैं, उस वाणी के पीछे आत्मा की प्रेरणा होती है, उसी प्रकार ईश्वर जीवात्मा के भीतर अपनी प्रेरणा से जीवात्मा में भाषा, उसके भावों व अर्थों का प्रकाश कर देता है। इसके होने से सभी मनुष्य आरम्भ में सभी आवश्यक व्यवहार करने में समर्थ हो जाते हैं।

भाषा के साथ मनुष्यों को ज्ञान की भी आवश्यकता है जिससे वह सत्यासत्य को जान सकें। ईश्वर है या नहीं, है तो कैसा है? कहाँ है, क्या करता है? उसका स्वरूप कैसा है? हम कौन है? हमारा स्वरूप कैसा है? हमारे जीवन का उद्देश्य क्या है? क्यों हमारा जन्म हुआ है? हमारे जीवन का जो उद्देश्य है उसकी पूर्ति कैसे होगी? हमें अन्य प्राणियों के प्रति कैसा व्यवहार करना है? आदि अनेकानेक प्रश्न हैं, जिनका उत्तर सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न मनुष्य प्राप्त नहीं कर सकते। इसके लिए भी उसे ईश्वर की सहायता की अपेक्षा है। **यह सहायता ईश्वर वेदों का ज्ञान प्रदान कर पूरी करता है।** सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने चार सबसे अधिक पवित्र आत्माओं, ***अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा*** को क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद, एक–एक वेद का ज्ञान दिया। यह ज्ञान ईश्वर ने इन जीवों अर्थात् ऋषियों की आत्माओं मे प्रकट किया। सृष्टि की आदि से परम्परा चली आ रही है जिसमें कहा गया है कि चारों वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तकें हैं। महर्षि दयानन्द ने भी इसकी पुष्टि की है और लोगों को चुनौती दी कि जो चाहे उनकी वेद विषयक या अन्य मान्यताओं पर वार्तालाप व शास्त्रार्थ कर सकता है। उन्होंने अपनी तरफ से सभी सम्भावित प्रश्नों के समाधानपरक उत्तर अपनी पुस्तकों में स्वयं ही दिए हैं। **उनके अनुसार ईश्वर ने मनुष्य को चार वेदों में ज्ञान, कर्म, उपासना व विज्ञान विषयों का आवश्यक ज्ञान दिया है जिसको जानकर व चिन्तन कर वह सभी प्रश्नों के उत्तर पा सकता है और वेदाध्ययन से जो मेधा व विवेक उत्पन्न होता है, उससे स्वयं विज्ञान को विकसित कर जीवन को समुन्नत कर सकता है और साथ ही विज्ञान से होने वाले अनर्थों व बुराईयों में न फँसकर धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।**

आइए, स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में वेदों के आविर्भाव एवं उसके प्रचार या व्याप्ति के बारे में जो तथ्य व रहस्यों का उद्घाटन किया है, उन्हीं के शब्दों में उन्हें देख लेते हैं। वह लिखते हैं– '**प्रथम सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा, इन ऋषियों** के आत्मा में एक एक वेद का प्रकाश किया।... **ब्रह्मा के आत्मा में अग्नि आदि के द्वारा स्थापित कराया।...** जिस परमात्मा ने आदि सृष्टि में मनुष्यों को उत्पन्न करके अग्नि आदि चारों महर्षियों के द्वारा चारों वेद ब्रह्मा को प्राप्त कराए और उस ब्रह्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा से ऋग्, यजुः, साम और अथर्ववेद का ग्रहण किया।... वे ही चार सब जीवों से अधिक पवित्रात्मा थे। अन्य, उन के सदृश नहीं थे। इसलिए पवित्र विद्या का प्रकाश उन्हीं में किया। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं कि उन अग्नि आदि चार मनुष्यों के ज्ञान के बीच में वेदों का प्रकाश करके उनसे ब्रह्मादि के ज्ञान के बीच में वेदों का प्रकाश कराया था। इन ऋषि वचनों को पढ़कर ज्ञात होता है कि ईश्वर ने अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा चार ऋषियों या मनुष्यों को एक–एक वेद का ज्ञान दिया। इन चार ऋषियों ने ब्रह्माजी आदि ऋषियों वा मनुष्यों के ज्ञान में वेद स्थापित किए। पूना प्रवचन अर्थात् उपदेश मंजरी पुस्तक के पाँचवें प्रवचन में मनु का उल्लेख कर महर्षि दयानन्द कहते हैं कि मनु ने लिखा है कि ब्रह्माजी ने अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा इन चार ऋषियों से वेद सीख फिर आगे वेद का प्रचार किया। इस क्रम में महर्षि लिखते हैं कि प्रथमारम्भ में ईश्वर ज्ञान से इन चार ऋषियों के ज्ञान में वेद प्रकाशित हुए और उनसे ब्रह्माजी ने सीखे और पश्चात् उन्होंने सारी दुनिया भर में फैलाए, और उनसे मनुष्यों को ज्ञान प्राप्त हुआ। यहाँ महर्षि ने इस विषय में उठने वाली कतिपय शंकाओं का निराकरण भी किया है। वह कहते हैं कि अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा इन चार ऋषियों को वेद प्रथम प्राप्त हुए। इस पर कोई कहेगा कि ये आदि में चार ही ऋषि क्यों थे? एक या अधिक क्यों न थे? तो ये शंकाएँ पाँच या तीन भी होते, तब भी बनी रहतीं। यह अशोकवनिका न्याय होगा। पूना प्रवचन इतिहास विषयक आठवें प्रवचन में महर्षि

शेष पृष्ठ 8 पर ☞

www.thearyasamaj.org

महात्मा आनन्द स्वामी एक सम्पूर्ण प्रेरक व्यक्तित्व

● डॉ. कृष्णावतार

आर्य समाज के नभ में अनेक ऐसे देदीप्यमान नक्षत्रों की ज्योति है, जिसके जीवन रूपी दर्शन के प्रकाश से कोई भी अपना मार्ग प्रशस्त कर सकता है। आज आर्यसमाज रूपी संस्था के प्रकाश पुंज में, जो थोड़ी–सी मन्दता प्रतीत हो रही है उसमें पुनः तेजस्विता प्रदान की जा सकती है। लेकिन ऐसा तभी सम्भव हो सकेगा, जब हम उन स्थितियों, परिस्थितियों में जीना सीख लेंगें, जिन स्थितियों, में हमारे आदर्श पुरुषों ने जीवन जिया है। कोई भी सिद्धान्त तभी प्रासंगिक व प्रचारित होता है जब उसे जिया जा सके। आर्य समाज के सिद्धान्तों को जीने वालों की जब अधिकता हुई है तभी सनातन व वैदिक मूल्य लोगों के सिर चढ़कर बोले हैं।

आज आर्य समाज के पास उन मूल्यों को जीने वालों का अकाल–सा पड़ा हुआ है। सिद्धान्तों पर तर्क वितर्क करने वाला समूह है, पर उन पर आस्था रख करके जीने वाले सम्भवतः कम ही नजर आते हैं। ऐसी स्थिति में हमें अपने उन आदर्श पुरुषों के जीवन दर्शन में झाँकना होगा, जिन्होंने जीवन जीने की एक आदर्श जीवन शैली विकसित की है। उन्हीं में से एक हैं पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी, जिनके जीवन की कुछ, प्रेरणात्मक घटनाओं को यहाँ इसलिए प्रस्तुत कर रहा हूँ कि वे निश्चित ही हमारा मार्ग दर्शन करेंगीं।

हम सब सम्भवतः परिचित होंगें कि हिन्दू मान्याताओं की विकृतता से त्रस्त होकर श्री मुन्शी गणेश दास जी जब ईसाई बनने की तैयारी कर रहे थे, तभी महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की प्रभा के तेज ने उन्हें आर्य समाज का दीवाना बना दिया था, उन्हीं श्री मुन्शी गणेश दास जी के यहाँ 15 अक्तूबर 1883, को एक बालक का जन्म हुआ। नाम रखा गया खुशलहाल चन्द। नाम की सार्थकता के अनुसार बालक के मुख पर खुशहाली दूर–दूर तक दिखाई नहीं देती थी। क्योंकि सभी उसे मन्दबुद्धि कहते थे। पूज्य स्वामी नित्यानन्द जी की कृपा से उन्हें माँ गायत्री से लगाव हुआ और यह लगाव ऐसा हुआ जो जीवन भर उसी के होकर रहे। उस लगाव ने उन्हें वह सब कुछ दिया, जिसके लिए यह आत्मा शरीर धारण करता है। मां गायत्री की कृपा से, पूर्व जन्मों के संस्कारों से, या माता–पिता के संस्कारों से श्री खुशहाल चन्द जी ने ऐसा रास्ता चुना, जो प्रभु की कृपा से ही प्राप्त होता है।

खुशहाल चन्द जी का विवाह हो चुका था, प्रथम पुत्र का जन्म भी हो चुका था। पिता श्री मुन्शी जी कर्तव्य के वशीभूत पुत्र को व्यावसायिक कार्यों में व्यस्त कराना चाहते थे, पर नियति को तो कुछ और ही कराना था। आर्य समाज जलालपुर जट्टा के वार्षिकोत्सव पर पूज्य महात्मा हंसराज जी पधारे। उनके उपदेश हुए। उनके भाषण ों की रिपोर्ट तैयार करके खुशहाल चन्द जी महात्मा हंसराज जी के पास पहुँचे। महात्मा जी ने उस रिपोर्ट को पढ़ा और पढ़कर उन्हें आश्चर्य हुआ, शॉर्टहैंड न जानने वाला यह युवक कैसे ऐसी अच्छी रिपोर्ट तैयार कर सकता है? परिचय हुआ। सम्भवतः यहीं से त्याग की प्रतिमूर्ति ने खुशहाल चन्द जी को त्याग का मर्म समझा दिया होगा। पिता के द्वारा पुत्र को पढ़ाई–लिखाई में कमजोर होने की बात सुनकर महात्मा जी ने बालक के होनहार होने की बात कही। लाहौर आने के लिए कहने पर, पिता ने जब महात्मा जी से पूछा कि यह वहाँ क्या करेगा? महात्मा जी के ये शब्द कि **वहाँ यह वही करेगा जिसके लिए भगवान ने इसे भेजा है। भगवान की प्रेरणा तो विशेष जनों को** कुछ विशेष ही करने के लिए होती है।

महात्मा हंसराज जी का पत्र आने के बाद खुशहाल चन्द जी भी कुछ विशेष करने के लिए लाहौर के लिए निकल पड़े। महात्मा जी से मिले। महात्मा जी ने उन्हें आर्य गजट के सम्पादक लाला राम प्रसाद जी के पास भेजा और कहा कि मैंने उनसे बात कर ली है, आपको उन्हीं से लेखन कला का अभ्यास करना है। जैसा वे कहें, वैसा ही करते रहिए। महात्मा हंसराज जी की आज्ञा शिरोधार्य करके खुशहाल चन्द जी आर्य गजट कार्यालय में पहुँचे और श्री राम प्रसाद जी से मिले। लाला राम प्रसाद जी ने अपने सामने खड़े ग्रामीण युवक को देखा, तो विस्मय से पूछा– "जलालपुर जट्टा आर्य समाज के सम्मेलन की रिपोर्ट क्या तुम्हीं ने तैयार की थी?" जी हाँ मेरा ही नाम खुशहाल चन्द खुर्सन्द है। लाला राम प्रसाद जी ने कहा "रिपोर्ट तो तुम्हारी बहुत अच्छी है लेकिन... आदि आदि बात करके पुनः कहा कि महात्मा जी ने तुम्हें बुला लिया है तो सोच समझकर ही बुलाया होगा। मेरी राय में तुम अभी प्रबन्ध–विभाग में एकाउंटेन्ट का कार्य देखो। और हाँ वेतन केवल तीस रुपए मासिक ही होगा। खुशहाल चन्द जी के जीवन का यह प्रारम्भिक और महत्त्वपूर्ण क्षण होगा, क्योंकि महात्मा जी ने उनकी रिपोर्ट देखकर लाहौर बुलाया ही इसलिए था कि वे आर्य गजट में लेखन कार्य करें और सम्पादन में सहयोग दें। लेकिन यहाँ उन्हें कार्य करने के लिए कहा गया, जो उनके लिए रूचिकर ही नहीं था। पर महान लोगों का महत्त्व तो ऐसे ही क्षण उभरकर आता उनको महात्मा जी के ये शब्द भी स्मरण थे कि जैसा वे कहें, करते रहिए।

खुशहाल चन्द जी ने नतमस्तक होकर आर्य गजट में समर्पण भाव से एकाउटैन्ट का कार्य प्रारम्भ कर दिया। कार्यालय में खर्च के लिए देने के हिसाब को न लिख पाने के कारण, प्राप्त तीस रुपए में से कुछ रुपए तो कार्यालय के हिसाब की पूर्ति में ही व्यय होने लगे शेष रुपए में तो उदर की पूर्ति भी ठीक से नहीं होती। खुशहाल चन्द जी उदर पूर्ति के लिए कभी चने खाते, कभी भूखे रहकर ही दिन व्यतीत कर रहे थे। लेकिन स्वास्थ्य को तो गिरना ही था। खुशहाल चन्द जी की दुर्बलता का कारण जब महात्मा जी ने सुना तो उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ।

मैंने आपको पत्रकार बनने के लिए बुलाया था, कल से ही आप वही कार्य करेंगे। महात्मा जी के ऐसा कहने पर, अगले दिन से खुशहाल चन्द जी आर्य गजट के सह सम्पादक बना दिये गए और वे उसी का कार्य करने लगे।

कार्य छोटा है या बड़ा, महत्त्व उसको करते समय की भावना का है। समर्पण की दृष्टि का है। वह पवित्र और समर्पण की भावना ही मनुष्य में महानता स्थापित करती है। उपनिषदों में ऐसे कई कथानक वर्णित हैं जहाँ शिष्य गुरु के पास अध्ययन करने जाता है। गुरु कभी गौ की सेवा के लिए भेज देता है तो कभी वर्षा के पानी को खते से बाहर रोकने के लिए। शिष्यों का महत्त्व इन्हीं परेशानियों से निर्मित होता हुआ दिखता है। अतः पीड़ा परेशानियों को समर्पित भाव से अपनाने वाला ही मार्ग दर्शक का रूप धारण कर लेता है।

श्री खुशहाल चन्द जी पीड़ाओं को हँसकर स्वीकार करते थे। लेकिन पति की दुर्बलता को देखकर उनकी धर्म देवी लाहौर में उन्हीं के साथ रहने लगी। गाँव में साधनों से युक्त जीवन जीने वाली श्रीमती मेला देवी जी ने साधनों का अभाव व्यक्त करते हुए जब अपने पिता को पत्र लिखा तो पिता ने 15 रुपयों का मनी आर्डर भेज दिया। रुपए प्राप्त होने पर मेला देवी जी ने जब सब वृतान्त सुनाकर रुपए आने की बात कही तो खुशहाल चन्द जी अपनी गरीबी का वर्णन अपनी पत्नी से सुनकर थोड़ी देर खामोश बैठे रहे। फिर होठों पर मुस्कराहट लाते हुए बोले... हार मान गई, मैंने सोचा था कि तू बहादुर है किन्तु निर्धनता ने तुझको निर्बल कर दिया है। जलालपुर से पैसे तो मैं भी मँगा सकता था, किन्तु हमें अपने पैरों पर खड़े होना है। बाह्य सहायता से कब तक काम चलेगा? यह भी तो एक तपस्या है यदि हम इसमें सफल नहीं हो सकेंगें तो फिर भविष्य में हम कैसे सफल होंगें, और हां इसकी सफलता तुम पर निर्भर है।

यह सुनकर श्रीमती मेला देवी जी की आँखों में आँसू आ गए। एक तपस्वी की वाणी सुनकर और ऐसा सार्थक उद्बोधन सुनकर, भला कौन अपने आसूँओं को रोक पाएगा।

जीवन चक्र की इन्हीं प्रतिबद्धताओं को जीते हुए खुशहाल चन्द जी का जीवन व्यतीत हो रहा था। पग–पग पर महात्मा हंसराज जी का मार्ग दर्शन प्राप्त हो रहा था। महात्मा हंसराज जी के निर्देश पर ही राष्ट्रीय समाचार पत्र मिलाप निकाला गया। साधनों को हमेशा ही नकारने वाले खुशहाल चन्द साधनों की अपेक्षा रखने वाले समाचार पत्र जैसे कार्य को कैसे साकार रूप देते। लेकिन संकल्प की ऊँचाई से बड़ा कोई साधन नहीं होता है ऐसी मान्यता के पोषक इस कार्य में भी समर्पण भाव से जुटे रहे। मिलाप धीरे–धीरे आगे बढ़ने लगा, और बढ़ने लगा घाटा भी।

ईश्वर पर विश्वास करने वाले खुशहाल चन्द जी इन घाटों से भला कहाँ घबराने वाले थे। दूसरों को निर्धनता में जीना भी एक तपस्या कहने वाले, भला क्या ऐसी स्थिति में विचलित होने वाले थे। विपरीत परिस्थिति में भी जीवन का वास्तविक मार्ग समझने वाले खुशहाल चन्द जी अपनी सारी प्रतिबद्धताओं को मिलाप से जोड़कर देख रहे थे और राष्ट्र निर्माण और मिलाप में काम करने वालों के लिए जी रहे थे।

एक बार जब घर में खाने के लिए घी समाप्त हुआ तो श्रीमती मेला देवी जी ने अपने पुत्र ओम जी को कहा कि "जाओ, अपने पिता जी से पैसे लेकर घी ले आओ"। ओम जी जब अपने पिता जी के पास पहुँचे, तो वहाँ मिलाप के लिए डाकिया मनी आर्डर से रूपए लेकर आया था। पिता ने ओम जी से रूपये गिनने के लिए कहा। ऐसा करके ओम जी ने डाकिया के चले जाने के उपरान्त अपने पिता से घी लाने के लिए पैसे माँगें तो खुशहाल चन्द जी ने कहा जाकर अपनी माता जी से कह दो कि आज घी के बिना काम चलाएँ, मेरे पास पैसे नहीं हैं।

ओम जी को मालूम था कि पता जी झूठ सुन नहीं सकते, बोलने की बात तो

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

www.thearyasamaj.org

अन्धकार से प्रकाश की ओर

● डॉ. बिजेन्द्रपाल सिंह

चिन्ता, भय, शोक, लोभ, मोह, ईर्ष्या आदि क्लेशों से मनुष्य का जीवन कष्टमय होकर रह जाता है। चाहे कितना भी धनाढ्य क्यों न हो उसके पास आधुनिक सभी सुविधाएँ क्यों न हों वह भी आज के समय में व्यथित है। रात्रि में शान्ति से निद्रा भी नहीं। इसी से अनिद्रा, बेचैनी, रक्तचाप, विकृत पाचन क्रिया होकर भी रोगों ने घेर लिया। परिवार में पुत्र पिता में विद्रोह, भाई–भाई में विद्रोह, सम्बन्धीजनों से ईर्ष्या झगड़े आदि मैं मनुष्य का जीवन यूँ ही व्यतीत हो जाता है। अन्तिम श्वास के समय विचार करता है यह जीवन तो मैंने यूँ ही खो दिया। वह सब धनादिक किसके लिए एकत्र किया था। कोई श्रेष्ठ कार्य भी न किया। जीवन भर अशान्ति रही, बेचैनी रही, जीवन में दिन रात भाग दौड़ में ही रहा। यह जन्म जिस हेतु मिला था यूँ ही चला गया। अन्त में पश्चात्ताप से कुछ नहीं होने वाला। इसलिए मनुष्य को आरम्भ से ही ईश्वर के स्वरूप को जानने उसको जानने से लाभ, न जानने से हानि, सब कुछ जानने का प्रयत्न करना चाहिए। स्वाध्याय करना चाहिए। वेद व वैदिक शास्त्रों को पढ़ना व पढ़ाना चाहिए, इसके लिए ईशोपनिषद पर एक दृष्टि डालते हैं। जिससे मन के विकारों का निराकरण होता है।

ईशावास्यमिदम् सर्वयत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।

अर्थात् इस जगत में जो भी संसार है वह सब ईश्वर से आच्छादित है। अतः प्रारब्ध कर्मानुसार प्राप्त धन का त्याग के भाव से उपभोग कर। हे मनुष्य! यह धन किसका है।

मंत्र में कहा गया है कि सृष्टि में सर्वत्र ईश्वर व्यापक है। यह धन व उपभोग की वस्तुएँ सब उस के ही तो हैं। इस धन का जो पुरुषार्थ से प्राप्त किया है, त्याग के भाव से उपभोग करना चाहिए। परन्तु मनुष्य सोचता है जो आवश्यकता से भी अधिक एकत्र किया वह सब मेरा है। यह मनुष्य की भूल है। महाराजा युधिष्ठिर, विक्रमादित्य, महाराजा भोज के बड़े–बड़े भव्य राजमहल अक्षौक्षिणी सेनाएँ थी। आज वहाँ खण्डहर हैं। धन से कोई अमर नहीं हुआ।

ब्रहदारण्यक उपनिषद् में कथानक है कि जब याज्ञवल्क्य संन्यास आश्रम हेतु प्रवृत्त हुए तब मैत्रेयी व कात्यायनी को अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति का विभाग कर उन्हें देने को कहा। इस पर मैत्रेयी कहती है कि क्या धन मुक्ति का साधन है? याज्ञवल्क्य कहते हैं कि धन मुक्ति का साधन तो नहीं लेकिन जिस तरह धनिक व्यक्ति अपना सुख पूर्वक जीवन यापन करते हैं तुम भी वैसे ही करोगी। इस पर मैत्रेयी कहती है कि यह सम्पूर्ण वसुन्धरा भी मुझे मिल जाए तो भी मैं अमर न हो सकूँगी। अतः यह धन मेरे किस काम का, मुझे तो जो ज्ञान आपके पास है वही मुझसे कहिए। आशय यह है कि प्राचीन काल में भोगविलासिता नहीं थी। वेदादि शास्त्रों का ज्ञान था। जिसके प्रभाव से ही भरत से भाई थे जिन्होंने राजसिंहासन को भी ठुकरा दिया था। पौराणिक कथानक के अनुसार महाराजा हरिश्चन्द्र व तारामती राजपाट से दूर नौकर की भाँति जीवन यापन करने को उद्यत हुए। उनकी वाणी में सत्य निष्ठा थी। वह नियमों के लिए दृढ थे।

सांख्य शास्त्र में कपिल मुनि ने कहा है कि संसार में जितने भी सुख हैं वे सब दुःख मिश्रित होने से दुःख ही हैं। आज भौतिक साधन, प्रमाद की वस्तुएँ, धन की आसक्ति, आवश्यकता से कहीं अधिक धन के लालच ने मनुष्यों को व्यथित कर दिया है। इसलिए ही वह कष्ट के वातावरण में जी रहा है। उपनिषद् हमें इस भौतिक जगत् की तृष्णा से दूर ईश्वर की ओर ले जाते हैं जहाँ ईश्वर के प्रति समीप आकर ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान, लोभ आदि क्लेश दूर होते हैं। अतः परमात्मा को सदैव स्मरण करना चाहिए। उसकी ही उपासना करनी चाहिए।

ऐसा उपदेश किया है कि मनुष्य धर्मानुसार वेदोक्त कर्म करता हुआ जीवन यापन करे। सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करे। इससे अवैदिक, अधर्म युक्त कर्म जीवन से दूर रहते हैं। पापों से दूर रहता है।

वेदानुसार हमारे लिए जो आवश्यक है उसका पालन करना ही धर्म है।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ँ समाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

हमें धर्मानुसार प्रारब्ध प्राप्त धन से ही जीवन निर्वाह करना चाहिए। अन्याय से पराए धन को प्राप्त करने का विचार भी नहीं करना चाहिए। यह जगत् परमात्मा की शक्ति से ही चल रहा है। अग्नि, वायु, सूर्य आदि अपना–अपना कार्य कर रहे हैं, संसार का उपकार हो रहा है। हमें भी ईश्वरोपासना से उस ज्ञान की प्राप्ति हेतु प्रयत्न करना चाहिए।

आत्मा के विपरीत आचरण करने वाले, अविद्या में पल रहे अन्धकार से आच्छादित व्यक्ति पाप कर्म करने वाले असूर्या कहलाते हैं और जीते हुए भी तथा मर कर भी दुःख व अन्धकार सभी भोगों को प्राप्त होते हैं। मनुष्य को उस परमात्मा की उपासना करनी चाहिए जो वर्ण रहित है। वह हमारे पास भी है और दूर भी है। मन की गति से भी तेज चलने वाला है। सबका द्रष्टा, जगत् का रचने वाला वही एक परमात्मा है। विज्ञान सम्पन्न मनुष्य सब प्राणीमात्र को अपने आत्मा के समान ही सुख–दुःख वाले जानते हैं। क्या शोक, क्या मोह इससे दूर रहते हैं और परमात्मा की ही उपासना करते हैं।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्..." सत्य का मुख सुवर्ण आदि धन सम्पत्ति जो दुःख का कारण है, से ढका हुआ है। मनुष्य के लिए उपदेश है कि उसे सत्य स्वरूप के दर्शन के लिए खोल दे। ऐसा उपदेश उपनिषदों में मिलता है कि प्रयाण काल में कर्मयोगी परमात्मा को याद करे। अपने किए कर्मों को याद करे। जो अच्छे कर्म किए होंगे तो मृत्यु भी सुखपूर्वक होगी। जीवन में अच्छे कर्म कर अगले जीवन में भी उनका सूखपूर्वक फल प्राप्त होगा।

इसलिए ईश्वर से सदैव यही प्रार्थना करते रहना चाहिए कि जो भी हमारे अन्दर कुटिलता व पाप हैं वे हमसे दूर रहें। सदैव धर्मानुसार कार्य करें जिससे इस जीवन में तथा आगे भी सुख की प्राप्ति हो। लोभ, मोह, द्वेष आदि क्लेशों से दूर रहें। उपनिषद् हमारे जीवन को पवित्र व मधुर बनाते हैं ईश्वर के समीप जाने में हमारी सहायता करते हैं। उपनिषदों का स्वाध्याय प्रत्येक के लिए आवश्यक है।

चन्द्रलोक कालोनी, खुर्जा

☞ पृष्ठ 6 का शेष

वेदाविर्भाव एवं ब्रह्मादि...

लिखते हैं कि सब के पश्चात मनुष्य प्राणी उत्पन्न किया गया। **वे मनुष्य बहुत से थे।** अन्यान्य मतों में तो दो ही मनुष्य उत्पन्न किए थे ऐसा मानते हैं। सो ठीक नहीं है। कुछ आगे वर्णन है, ... **आर्यावर्त में लोक संख्या बहुत हो गई, उसे न्यून करनी चाहिए, इसलिए आर्य लोग अपने साथ मूर्ख शूद्रादि अनार्य लोगों को लेकर विमान उड़ाते फिरते, जहां कहीं सुन्दर प्रदेश देखा कि झट वहीं पर बस जाते इस प्रकार सब जगत् के प्रत्येक देश में मनुष्य फैले।** पूना प्रवचन के दसवें प्रवचन में महर्षि दयानन्द संक्षिप्त विद्या के इतिहास का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सबसे पहला विद्वान देव ब्रह्मा हुआ। **इसने अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा चार ऋषियों के पास वेद पढ़ा। इस ब्रह्मा का पुत्र विराट्, उसका पुत्र मनु, मनु के दश पुत्र मरीचि, अत्रि, अंगिरा आदि थे। (इस उल्लेख से यह ज्ञात होता है कि आदि ऋषि ब्रह्माजी ने विवाह किया था)।** सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण से भी एक उदाहरण प्रस्तुत है। महर्षि प्रश्न करते हैं कि जब परमेश्वर ने पहले सृष्टि रची तब एक–एक दो–दो मनुष्यादिक जाति में रचे अथवा अनेक रचे थे? इसका उत्तर वह देते हैं कि एक–एक जाति में परमेश्वर ने अनेक–अनेक रचे हैं। एक–एक या दो–दो नहीं। क्योंकि चिंवटी आदि जाति एक द्वीप में एक–एक दो–दो रचते तो द्वीपान्तर में वे कैसे जा सकती इत्यादिक और भी विचार आप लोग कर लेना। यहाँ गुरुदत्त लेखावली से मुण्कोपनिषद् के आरम्भ में प्रस्तुत उपयोगी अंश प्रस्तुत करना प्रासंगिक है जो बताते हैं कि विद्वानों में सब से पहला विद्वान् ब्रह्मा था जो कि प्रकृति के भौतिक नियमों का पूर्ण ज्ञाता और निपुण शिल्पी था। वह मनुष्य जाति का रक्षक था। उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्व को ब्रह्मविद्या सिखलाई जो कि बाकी सब प्रकार की विद्याओं से श्रेष्ठ है। अथर्व ने वही विद्या अंगिरा को, अंगिरा ने भारद्वाज सत्यवाह को और सत्यवाह ने अंगिरस को बताई। इस प्रकार यह परम्परा से चली आई है।

महर्षि के वचनों से ज्ञात होता है कि ईश्वर ने अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा, इन चार ऋषियों को एक–एक वेद का ज्ञान दिया। ब्रह्माजी पहले ऐसे आदि मनुष्य–पुरुष या ऋषि हैं जिन्हें इन चार ऋषियों से एक–एक करके चारों वेदों का ज्ञान प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् सृष्टि के आदि में जो अन्य स्त्री व पुरुष उत्पन्न हुए थे, उन्हें ब्रह्माजी ने वेदों का ज्ञान कराया। यहाँ यह शंका होती है कि क्या अग्नि, आदित्य व अंगिरा ने, ब्रह्माजी को वेदों का ज्ञान देते समय या उसके बाद, अन्य–अन्य तीन वेदों का ज्ञान प्राप्त किया अथवा नहीं। हमें लगता है कि इस विषय में हमारे शास्त्र व आप्त वचन आदि उपलब्ध नहीं हैं। इसमें क्या रहस्य है? सामान्य स्थिति में हमें लगता है कि अग्नि, वायु

शेष पृष्ठ 9 पर ☞

www.thearyasamaj.org

कृतज्ञता की शक्ति

• नीला सूद

हम सभी जानते हैं कि कृतज्ञता शब्द का सीधा अर्थ है उन सभी के प्रति आभार व्यक्त करते रहना है जिनसे हमें जीवन में कुछ भी प्राप्त होता है। वैसे तो हर एक के जीवन में कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो कि उसके जीवन को प्रभावित करते हैं, अच्छा बनाते हैं व ऊँचा उठाते हैं व कई बार उसे कठिनाई की परिस्थिति में बाहर निकालने में सहायक होते हैं। उनके प्रति कृतज्ञ रहना हमारा धर्म है। परन्तु वेदों के अनुसार जिन तीन का हर मनुष्य को हर समय कृतज्ञ रहना चाहिए वे हैं- सृष्टि का रचयिता व सबका पालनहार ईश्वर, दूसरा, माता पिता जो कि हमें जन्म देकर पालन पोषण करते हैं व तीसरा, हमें जीवन का रास्ता दिखाने वाला गुरु!

इनमें सब से पहले ईश्वर के प्रति धन्यवादी व कृतज्ञ रहने के लिए कहा गया है। एक महान् लेखक का कहना है कि जब हम सृष्टि के रचयिता व सबके पालनहार ईश्वर के कृतज्ञ हो जाते हैं तो स्वाभाविक तौर पर सब के कृतज्ञ हो जाते हैं क्योंकि बाकी सब कृपा के पात्र जैसे कि माता पिता, गुरु, मित्र, अच्छा जीवन साथी, अच्छी संतान इत्यादि भी प्रभु की असीम कृपा से मिलते हैं। अर्थात् कृतज्ञता का अर्थ यह हुआ, "प्रभु व उसकी असीम कृपा से प्राप्त वस्तुओं के प्रति सन्तोष व आभार।"

कृतज्ञता में अद्भुत शक्ति है। यही नहीं, जो व्यक्ति कृतज्ञता की भावना से जीवन जीता है उसे हर समय अद्भुत आनन्द की प्राप्ति होती है। जहाँ कृतज्ञता की क्रिया आनन्दमय है, प्रक्रिया उस से भी कहीं अधिक आनन्दमय व सुख देने वाली है। जो व्यक्ति कृतज्ञता के आनन्द को एक बार भोग लेता है धन्यवाद करना उसकी आदत बन जाती है व जीवन शैली बन जाती है। वह वर्षा की बूँदें पड़ते देखे या फिर सूर्य को उदय होते देखे, एकदम नतमस्तक होकर ईश्वर का धन्यवाद करता है। यही नहीं भीड़ वाले स्थान पर बैठने का स्थान मिल जाए तब भी वह ईश्वर का धन्यवाद करता है।

एक बहुत सफल व्यक्ति का कहना है कि जीवन में उसने जो भी प्राप्त किया वह कृतज्ञता को अपने जीवन की शैली बना कर किया। उसका यहाँ तक कहना है कि अगर आप सफल जीवन के रहस्य ढूँढ रहे हैं तो सब से पहले कृतज्ञता को अपने जीवन की शैली बना कर देखें। यही नहीं उसका मानना है कि अगर आप अपने पास मौजूद चीजों के बारे में कृतज्ञ नहीं तो आपके पास ज्यादा चीजें आना असंभव है। क्योंकि आप कृतघ्नता (जिसने हमारे साथ अच्छा किया हो उसका आभारी grateful न होना) की अवस्था में होते हैं तो जो आपके विचार व भावनाएँ होती हैं वे सभी नकारात्मक होती हैं जैसे कि असंतुष्टि, ईर्ष्या आदि, इन भावनाओं के साथ और चीजें पाना असम्भव है।

दुनिया के महानतम वैज्ञानिक आईस्टीन की जब भी कोई प्रशंसा करता था तो वह बहुत विनम्र भाव से उन से पहले हुए वैज्ञानिकों का धन्यवाद करते जिनके किए हुए काम को आधार बना कर आगे बढ़ सके। यह है कृतज्ञता।

आप की कृतज्ञता की क्रिया जहाँ एक ओर दूसरे को सुख देती है वहीं आप को उस की नज़र में ऊँचा भी उठा देती है। मुझे याद आती है 2004 में मैं जब अपने पति के साथ पाकिस्तान यात्रा के दौरान लाहौर के अनारकली बाज़ार में घूम रही थी तो वहाँ हमने English में एक बोर्ड पर लिखा देखा 'धर्मा मार्केट' धर्मा क्योंकि संस्कृत हिन्दी शब्द है तो जानने की इच्छा हुई। वहाँ के दुकानदारों से प्रश्न किया कि मार्केट का नाम धर्मा क्यों है? तो जो उन्होंने बताया वह दिल को खुश करने वाला था। उनमें से सब से बुजुर्ग ने बताया कि जहाँ यह मार्केट है वहाँ पहले धर्म चन्द सेठ जी की हवेली होती थी। सेठ बहुत धर्म-कर्म करने वाले थे। दान-पुण्य करते थे। जब देश का बँटवारा हुआ तो वह हिन्दुस्तान चले गए। हमने कुछ समय बाद उस हवेली को Market में बदल दिया। फिर प्रश्न उठा कि नाम क्या रखें। तो सभी ने कहा कि जिस सेठ की वजह से हमें यह दुकानें मिलीं नाम उसी के नाम पर होना चाहिए। इस तरह उस मार्केट का नाम 'धर्मा मार्किट' रख दिया। इस उदाहरण में देखने वाली बात यह है कि लाहौर वालों के कृतज्ञता पूर्ण कार्य ने जहाँ हमें अपार सुख दिया वहीं उनके प्रति हमारे दिल में आदर की भावना भी भर दी। यह है कृतज्ञता की शक्ति।

कृतज्ञता की अनुभूति की सब से सुन्दर परीक्षा हम अपने घर में ही कर सकते हैं। अपने माता को यह कहेंगे कि जब हम ने जो भी पाया है वह आपकी कृपा व आशीर्वाद से पाया है तो जो उनके चेहरे पर खुशी होती है वह उन्हें दुनिया की और कोई चीज़ नहीं दे सकती। यही नहीं आपके घर का माहौल ही बहुत सुखद हो जाता है। इस के विपरीत जहाँ कृतघ्नता (ungratefulness) का वातावरण बन जाता है वहाँ क्लेश ही क्लेश रहता है।

अभी हाल में कृतज्ञता का एक सुन्दर उदाहरण तब मिला जब आर्य स्कूल नवांशहर, पंजाब में 1920-30 में शिक्षा प्राप्त करने वाले पाकिस्तान के जस्टिस मोहम्मद सिद्दीक़ी के कृतज्ञ मुसलमान परिवार ने इस विद्यालय में एक (auditorium) बड़ा हाल बनाकर इस आर्य स्कूल के प्रति अपना ऋण अदा किया। जस्टिस मोहम्मद सिद्दीक़ी की कृतज्ञता की भावना उन शब्दों से, जो कि उनके पुत्र जस्टिस खलील उल रहमान ने बयान किए से झलकती है--"मेरे पिताजी को अपने इस विद्यालय की बहुत याद आती थी। हमसे कहते थे--अगर आर्य समाजी यह स्कूल न खोलते तो न तो मैं पढ़ पाता और न ही जज बनता" इस सुन्दर कार्य का मूल्यांकन आप तभी कर सकते हैं जब खुद से यह प्रश्न करें कि क्या आप जस्टिस मोहम्मद सिद्दीक़ी के स्थान पर होते तो ऐसा कर पाते?

यह घटना इस बात को भी सिद्ध करती है कि कृतज्ञता एक ऐसा मानवीय गुण है जिस का धर्म, स्थान से कोई सम्बन्ध नहीं। जब यह स्पष्ट है कि कृतज्ञता एक ऐसा मानवीय गुण है जिससे अद्भुत आनन्द की प्राप्ति होती है, तो क्यों न इसे जीवन की शैली बनाया जाए।

231/सैक्टर, 45-ए
चण्डीगढ़

☞ पृष्ठ 8 का शेष

वेदाविर्भाव एवं ब्रह्मादि...

आदि चार ऋषियों ने भी अन्य-अन्य तीन वेदों का ज्ञान प्राप्त किया होगा जो उन्हें ईश्वर से प्राप्त नहीं हुआ था। यह प्रक्रिया इस प्रकार रही होगी कि ब्रह्माजी को ईश्वरीय प्रेरणा हुई होगी कि वह उन चार ऋषियों से चार वेदों का ज्ञान प्राप्त करें और अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा ऋषियों को प्रेरणा हुई होगी कि वह ब्रह्माजी को वेदों का ज्ञान कराएँ इसके लिए पाँचों ऋषि एक स्थान पर, ईश्वरीय प्रेरणा से उपस्थित हुए होंगे। वैदिक भाषा का ज्ञान ब्रह्माजी सहित आदि सृष्टि में उत्पन्न सभी मनुष्यों को पहले ही जीवस्थ स्वरूप से ईश्वर ने कराया था। जिस प्रकार गुरु पाठशाला में या गुरुकुल में विद्यार्थियों को बैठाकर उनके सम्मुख स्वयं बैठकर व बोल कर उपदेश द्वारा ज्ञान कराता है इसी प्रकार पहले अग्नि ऋषि ने ब्रह्मा, वायु, आदित्य व अंगिरा को यजुर्वेद का ज्ञान कराया होगा। इसी प्रकार आदित्य व अंगिरा ने अन्य-अन्य चार ऋषियों को सामवेद व अथर्ववेद का ज्ञान कराया होगा। यह स्वाभाविक है कि जब अग्नि ब्रह्माजी को ऋग्वेद का ज्ञान करा रहे होंगे तो वायु, आदित्य व अंगिरा खाली नहीं बैठे होंगे, वह भी सुन रहे होंगे और उन्हें भी ज्ञान हो गया होगा। हो सकता है कि कुछ विद्वान् व पाठक हमारे इस विचार से सहमत न हों। उनसे हम अपेक्षा करते हैं कि वह इससे जुड़े प्रश्नों का समाधान करें। ***यहाँ यह भी विदित होता है कि अग्नि आदि ऋषियों ने मन्त्रोचार के साथ मन्त्रों के अर्थ भी बताए होंगे अन्यथा उन्हें व अन्य ऋषियों को अर्थ ज्ञात न होते। अन्य ऋषियों ने भी अग्नि ऋषि का अनुसरण किया होगा। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ब्रह्मा, अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा को साथ-साथ चार वेद अर्थसहित ज्ञात हुए।*** हम इस सम्बन्ध में विद्वानों व पाठकों की प्रतिक्रिया जानना चाहते हैं।

पाँच ऋषियों के वेदज्ञ हो जाने पर, परमात्मा ने अन्य जो युवा स्त्री व पुरुष उत्पन्न किए थे, उन्हें वेदों का ज्ञान प्रदान किया जाना उनका लक्ष्य रहा होगा। क्योंकि इनमें से किसी एक या सबका खाली बैठना सम्भव नहीं था। हम अनुभव करते हैं कि इसके लिए उन सभी स्त्री-पुरुषों को पाँच कक्षाओं में बाँटकर एक-एक कक्षा को एक-एक ऋषि ने उपदेश-श्रवण विधि से अध्ययन कराया होगा। धीरे-धीरे सभी स्त्री-पुरुषों को वेदों का ज्ञान हो गया होगा। **हमारा अध्ययन व विवेक हमें बताता है कि प्राचीन काल के इन मनुष्यों का शारीरिक बल व बुद्धि की क्षमता आज के मनुष्यों से कहीं अधिक थी। इसलिए उनका वेदों को स्मरण करना व समझना आज के लोगों से कहीं अधिक सरल था। इसके साथ वेदों के ज्ञान के साथ उन्हें अपने भोजन आदि का भी ज्ञान हो गया होगा। वृक्षों पर फल व गो-दुग्ध तो पर्याप्त रहा ही होगा जिससे इन आदि वासियों ने अपने आहार की समस्या का निदान किया होगा।** ऋषि दयानन्द ने कहीं यह कहा है कि पाँच वर्षों तक इन मनुष्यों में बालकपन के समान अवस्था थी जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि इस समयावधि में इनमें कामवासना आदि का विचार नहीं आया था। इस बीच इन्होंने कृषि कार्यों, गोपालन व संवर्धन, रूई से वस्त्र निर्माण आदि, जिसका ज्ञान वेदों से प्राप्त हो गया होगा, इन्होंने कर लिया होगा और पाँच वर्षों में सब सामान्य रूप से पूर्णतः वेदों के अनुसार जीवन व्यतीत करने लगे होंगे। इसके साथ ही यज्ञ,

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

www.thearyasamaj.org

पत्र/कविता

तर्क का श्रद्धा द्वारा कत्ल

भारत वर्ष अगर एक हज़ार वर्ष तक गुलाम रहा व अभी भी समाज के बड़े भाग की हालत दयनीय है तो उसके लिये सब से अधिक जिम्मेवार है, एक साधारणतया प्रयोग किया जाने वाला यह वाक्य ''अपनी श्रद्धा की बात है।'' इस 'आस्था के नाम पर ही यहां बहुत से बाबे, गुरु, योगी, भगवान, महाराज, ढोंगी बापू लोगों को लुभाने और हिप्नोटाईज करने में लगे रहते रहते हैं और मन से अशांत मूर्ख जनता उस जाल में फंसती जाती है।

इस श्रद्धा के नाम पर जितने घिनोने, नीच व मूर्खतापूर्ण कार्य हमारे देश में किये जाते हैं उतने शायद किसी और देश में नहीं किये जाते। इनके तेजी से पनपने का बड़ा कारण है कि धर्मनिर्पेक्षता का बहुत ही गलत अर्थ निकाल कर राजनैतिक दल अपने वोटों के लिये किसी को भी श्रद्धा के नाम पर किये जा रहे शोषण व लूट कसूट के विरूद्ध आवाज़ नहीं उठाने देते। इस मामले में सभी दल एक हैं। एक ही तर्क लिया जाता है-- ''लोगों की अपनी श्रद्धा की बात है इसमें हस्ताक्षेप नहीं होना चाहिए।''

जो साहसी व्यक्ति व संस्थाएँ इस दिशा में कदम उठाती हैं उनका अन्त महाराष्ट्र के एक साहसी समाज सुधारक नरेन्द्र डाभोलकर की तरह होता है जो नरेन्द्र डाभोलकर के साथ हुआ वही भारतीय समाज के सब से बड़े समाज सुधारक स्वामी दयानन्द के साथ किया गया था। यही नहीं आज जो कोई आर्य समाजी राजनीति में चला जाता है वह स्वामी दयानन्द के साथ नाम जोड़ने से कतराता है उसे अपनी वोटें खोने का डर सताता है। कहने का अर्थ यह है कि भारत में तर्क की बात करना खतरे से भरा हुआ है व अगर शासन में है तब तो ऐसे पाखण्डों व अन्धविश्वासों के विरूद्ध आवाज उठाना आपको महंगा पड़ सकता है।

यह सच्चाई है कि नरेन्द डाभोलकर जैसे व्यक्ति कभी-कभी पैदा होते हैं। कारण, ऐसा बनने के लिये बहुत साहस चाहिए होता है जो कि सब मे नहीं होता यही कारण है कि उनके अनुयायी कुछ देर तक तो काम कर सकते है फिर वही हाल।

किसी में यह साहस नहीं कि इन सामाजिक कुरितीयों या पाखण्डों के विरूद्ध आवाज़ उठा सके जिसके लिये आर्य समाज बना था या जाना जाता था।

मेरे पिता जी बताते थे कि डी.ए. वी. कालेज लाहौर न विद्यार्थियों को यह आदेश था कि वह अपनी यात्रा उस दिन प्रारम्भ कर जिन दिनो को पण्डितों ने अशुभ बताया होता था, शादीयाँ उस दिन कर जिन दिनो को पण्डितों ने अशुभ बताया हो।

मैं चाहता हूं कि नरन्द्र डाभोलकर जैसे साहसी व्यक्ति की कुर्बानी व्यर्थ न जाये। यह लोगों मे चेतना लाए। इस अवसर पर हम अपने पाठको को एक प्रार्थना कर रहें हैं कि त्योहार के अवसर पर या वैसे भी पत्थर की मूर्तियों पर दूध फैंक कर नष्ट करने की बजाय किसी अस्पताल, अनाथालय या बालाश्रम में पहुचा दें। भारत मे 60 प्रतिशत बच्चों का पेट भर खाना नही मिलता और हम लाखों टन दूध मूर्तियों पर चड़ा कर नालियों में बहा देते है। यही सदेश अपने मित्रों व रिश्तेदारों को दें। यही स्वामी दयानन्द और नरन्द्र डाभोलकर को सच्ची श्रद्धांजली होगी।

भारतेन्दु सूद
231/सैक्टर 45 ए
चण्डीगढ

****

स्रोत की खोज

कथं वातो नेलयति कथं न रमते मनः।
किमावः सत्यं प्रेप्सन्तीर्नेलयन्ति कदाचन।।

अथर्व 10.8.37

निजमूल सभी को मधुर मधुर।
दौड़ते निरन्तर सभी उधर।।

क्षण नहीं ठहरता उड़ जाता,
यह वायु सदा बहता जाता।
सब बहती रहती सरितायें,
मन दौड़ लगाता मँडराता।
निज स्रोत खोजते सभी सुखर।
दौड़ते निरन्तर सभी उधर।।

रहते गतिशील सदाप्रति क्षण
क्यों नहीं शान्त होकर थमते,
प्रिय इन्हें स्रोत का आकर्षण।
इनको ईश्वर की दिशा रुचिर।
दौड़ते निरन्तर सभी उधर।।

साधक इनको आदर्श बना।
मोड़, स्रोत की ओर चेतना।
यम नियम योग सोपान पकड़,
तू प्रभु प्यारे तक पहुँच मना।
तू प्रणव वरण को पकड़ डगर।
दौड़ते पिरन्तर सभी उधर।।

देवनारायण भारद्वाज देवातिथि
'वरेण्यम्' अवन्तिका (I) रामघाट मर्ग,
अलीगढ़ 20 2001(उ.प्र.)

समझो तुम संत बन गये

क्रोध में जो इच्छा में, पूरी करो। लेकिन क्रोध आने पर केवल पाच मिनट चुप रह जाओ। शांत रह जाओ। मैं तुमसे सिर्फ पांच मिनट मांग रहा है। छटवा मिनट तुम्हारा है। मुझे क्रोध के प्रारम्भिक क्षणों के सिर्फ पांच मिनट दे दो।

मै दावा करता हूँ कि इन पाँच मिनटों में क्रोध की हवा निकल जायेगी, गुस्से का दम निकल जायेगा। क्रोध की आयु बहुत अल्प है। क्रोध ज्यादा देर जीवित नहीं रहता। पाच मिनट शात रहना सीख गये तो समझो तुम संत बन गये।

-कृष्ण मोहन गोयल
113-बाजार कोट
अमरोहा-244221

****

www.thearyasamaj.org

☞ पृष्ठ 7 का शेष

महात्मा आनन्द स्वामी...

दूर है। पर पिता जी पैसे क्यों नहीं दे रहे हैं? डरते हुए ओम जी ने पिता जी से पूछा पैसे तो अभी इतने सारे आए हैं। आपने अभी रखे हैं?

खुशहाल चन्द ने पुत्र ओम को बुलाकर कहा, यह बात नहीं है कि मेरे पास पैसे नहीं है। पैसे तो हैं किन्तु यह मिलाप के कार्यकर्ताओं का वेतन है। इनसे कार्यकताओं भुगतान करना है। अगर मैं, ये पैसे तुझे दे दूँगा तो यह ठीक नहीं होगा। मेरा परिवार दो दिन बिना घी के गुजारा कर ले, किन्तु मुझे यह मंजूर नहीं है कि मैं दूसरों के रुपयों से अपना काम चलाऊँ।

स्वयं के प्रति न्याय करने वाला, क्या हमारे मिशन के प्रति आदर्श नहीं होगा। निश्चित रूप से आर्यत्व ढोने और दिखाने के वस्तु नहीं है। उसे तो जीने की आवश्यकता है। हमारी बड़ी-बड़ी संस्थाओं पर बैठे हुए अधिकारी अगर इस तरह अपने कर्तव्य को समझते हुए, खास से आम तक ऐसी दृष्टि अपना लें, तो हमें अपने सिद्धान्तों को दूसरों को बताने के लिए, किसी रैली या किसी महासम्मेलन की आवश्यकता ही ना पड़े।

पर चर्चा तो पूज्य खुशहाल चन्द जी के जीवन की कर रहा था। "आनन्द कथा" को पढ़ने से ज्ञात होता है कि सारी पुस्तक ही उनके जीवन का महत्त्व वर्णित कर रही है। उसी में से एक घटना और प्रेरित कर रही है। खुशहाल चन्द जी, जो स्वभाव से तो बहुत पहले ही संन्यासी हो चुके थे, अब वस्त्र बदलकर महात्मा आनन्द स्वामी हो चुके थे। संन्यास लेकर पहली बार जब दिल्ली पधारे तो वसन्त विहार अपने आवास पर नहीं, अपितु आर्य समाज हनूमान रोड पहुँचें। कई दिन की यात्रा के कारण भोजन मिला नहीं था। भूख लग रही थी। उन्होंने अपना कमंडल उठाया और निकल पड़े फकीरों की तरह भोजन के लिए। बाहर किसी के घर का दरवाजा खटखटाया और रोटी के लिए भीख माँगी। घर की देवी ने दो रोटियों पर, सब्जी रखकर बाहर खड़े स्वामी जी को दे दीं। सरकारी नल पर बैठकर स्वामी जी रोटियाँ खाकर, पानी पीकर अभी समाज की ओर चले ही थे कि एक मोटर गाड़ी आकर उनके समीप रुकी जिसमें उनके पुत्र ओम जी थे। स्वामी जी के पास आए, प्रणाम किया और पूछा दिल्ली कब आए?

स्वामी जी ने आशीर्वाद देते हुए कहा था कि सुबह आया था। अभी रोटी खाने निकला था वहीं से आ रहा हूँ। आपने आने की खबर भी नहीं दी। मैं आपको स्टेशन पर लेने आ जाता? किस-किस को स्टेशन पर लेने आओगे? मैं तो अब फकीर हूँ।

ओम जी ने फिर कहाँ, रोटी किसके यहाँ खाने गए थे? वहाँ से आप पैदल ही आ रहे है। वह आपको छोड़ने नहीं आया क्या?

मैं किसके घर जाने लगा बाबा! वहाँ नल के पास बैठकर रोटी खा ली। उस घर की देवी ने खाना दे दिया। हो गया हमारा भोजन, यह बात जब ओम जी ने सुनी तो आँखों से आँसू बहने लगे।

शायद ये आँसू एक पुत्र के पिता के प्रति मोह के कारण भी हो सकते हैं। परन्तु मेरे जैसे या किसी और के भी अगर इस दृश्य को पढ़कर निकल रहे हैं तो वह इसीलिए हो सकते हैं कि सचमुच संन्यासी होना ऐसे व्यक्ति को चाहिए। जिसने अपने पूर्व के आवरण को हटा दिया है जिसका आत्मबल, समत्व की उच्चता को व्यक्त कर रहा है, जिसकी प्रतिबद्धता मात्र ईश्वर की वाणी का गान गाने और दूसरों को गवाने की होनी चाहिए। यह भावना तो उसी में हो सकती है जो सजगता से अपना आकलन करता रहे। हम आर्यसमाज के सिद्धान्तों, मूल्यों की रक्षा करने के लिए आर्य मूल्यों को जीने के लिए स्वयं प्रतिबद्ध हों और अपने आन्तरिक मूल्यों पर बाह्य कारणों को हावी न होने दें। पर यह तो तभी सम्भव है जब हम सजगता से अपना आकलन करते रहें। जैसे इस घटना में महात्मा आनन्द स्वामी जी कर रहे थे।

सन1975 में आर्य समाज की शताब्दी मनाने की तैयारी चल रही थी, आर्य समाज के वैदिक मूल्यों को जीने वाले, भले ही एक वाद को स्वीकार करते हों, पर स्वीकार करने वाले दो धाराओं में विभक्त थे, ऐसी स्थिति में दूसरों को एकता का सन्देश देने के लिए दोनों धाराओं की एकता आवश्यक थी। उसके लिए उपाय खोजने पर पाया गया कि महात्मा आनन्द स्वामी जी अगर जुलूस का नेतृत्व एवं अगुवाई करें, तो सब ठीक हो सकता है आपस में लड़ने को तैयार बैठे सभी इसके लिए सहर्ष तैयार थे। लेकिन जब स्वामी जी से कहा गया तो वे नेतृत्व और अगवानी करने के लिए तैयार नहीं हुए। अन्त में उन्होंने कहा कि आज इस बात को इसी जगह समाप्त किया जाए। भगवान जैसा चाहेगा वैसा ही होगा।

सभी के अपने-अपने घरों में चले जाने के बाद, उनके पौत्र श्री पूनम सूरी जी व श्री नवी सूरी जी ने महात्मा जी से पूछा कि समाज की एकता कि लिए आपने जलूस में शामिल होना स्वीकार क्यों नहीं किया? स्वामी जी मुस्कराए और बोले अगर मैं जुलस में जाना उसी समय स्वीकार कर लेता तो ऐसा लगता कि मैं इस की प्रतीक्षा में हूँ। मैं तो यह चाहता ही नहीं था। दूसरे मैं अपने हृदय के अन्दर टटोलना चाहता हूँ कि इस व्यवस्था से मुझे अभिमान तो नहीं हो जाएगा। यह मेरे लिए आवश्यक है। आदमी कह तो देता है कि वह बहुत नम्रता से स्वीकार कर रहा है लेकिन अन्दर से अहंकर जाग्रत होने लगता है। मैं नहीं चाहता कि मैं इस रोग का शिकार बनूँ। इससे तो अच्छा है कि मैं यहाँ से चला जाऊँ, किसी को मालूम नहीं होगा और मैं उस उलझन में फँसूँगा भी नहीं।

अन्त में स्वामी जी ने उस जलूस का नेतृत्व किया। परन्तु मेरे मन में बार-बार यह विचार कौंध रहा है कि जिस व्यक्ति को पीस देने वाली निर्धनता विचलित नहीं कर पाई, परिवार पर आई आपदाएँ दु:खी नहीं कर पाईं, विशाल प्रासाद खड़ा करके संन्यासी होने में उसके प्रति विशक्ति का भाव रखने में एक क्षण भी नहीं लगा। हिमालय की कन्दराओं में कई दिवस बिना खाए, पिए रहकर भी ईश्वर के प्रति विश्वास की दृढ़ता तीव्र होती गई। ऐसे दिव्य व्यक्ति को, महामानव को, अभिमान जैसे दंश से ग्रँसित न हो जाऊँ। इसकी चिन्ता थी। सजगता से अपने चित्त की वृत्तियों का आकलन करने वाला दिव्ययोगी ऋषि दयानन्द और महात्मा हंसराज की परम्परा को जी रहा था।

महात्मा आनन्द स्वामी जी का विलक्षण प्रेरणात्मक व्यक्तित्व हमारे लिए बहुत कुछ समेटे हुए है। जीवन जीने आए हैं। तो स्वयं चुनना पड़ेगा कि हमारे लिए क्या उपयुक्त है। आर्य समाज के सिद्धान्तों मूल्यों से परिचित होना, हमारे किसी पूर्व जन्म के संस्कारों का ही फल है, जो हमारे लिए सौभाग्य की बात है। लेकिन अगर इन मूल्यों को जीने के लिए हम प्रतिबद्ध नहीं हो पाए, तो शायद इससे बड़ा दुर्भाग्य भी हमारा हो नहीं सकता।

डी.ए.वी. स्कूल पुष्पांजलि एनक्लेव
दिल्ली-10034 मो. 9013340236

☞ पृष्ठ 9 का शेष

वेदाविर्भाव एवं ब्रह्मादि...

सत्संग अध्ययन-अध्यापन, स्वाध्याय, ज्ञान-विज्ञान की उन्नति के कार्य भी आरम्भ होकर अनेक सफलताएँ प्राप्त कर ली गईं होंगी और पाँच वर्ष पश्चात् इनको सामान्य जीवन व्यतीत करने में किसी प्रकार की कोई समस्या नहीं रही होगी। यदि कभी कोई समस्या आती होगी तो उसका समाधान वेद के आधार पर निकल जाता होगा। आगे सृष्टि किस प्रकार आगे बढ़ी इसका कुछ इतिहास तो उपलब्ध है व अनुमान से भी उसे जाना जा सकता है।

यह भी चर्चा कर लेना समीचीन है कि वैदिक प्राचीन साहित्य व बाद के स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों से यह ज्ञात नहीं होता कि अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा आदि चार ऋषियों ने परस्पर या ब्रह्माजी से तीन-तीन वेदों के ज्ञान का आदान-प्रदान किया अथवा नहीं। यह भी विदित नहीं होता है कि क्या सृष्टि के आदि काल में उत्पन्न अन्य स्त्री व पुरुषों को इन्होंने वेदाध्ययन-अध्यापन कराया अथवा नहीं। जैसा कि सुविदित तथ्य है कि कोई भी विद्वान् खाली नहीं बैठ सकता। वह भी तब, जब कि उसके आस-पास अशिक्षित-ज्ञानेच्छु व अज्ञानी लोग हों। अतः यदि इन ऋषियों का ब्रह्माजी को ज्ञान प्राप्त कराने के एकदम बाद संसार से प्रस्थान न हुआ होगा। तो हमें लगता है कि निश्चित रूप से इन्होंने पूर्व ही परस्पर या ब्रह्माजी से अन्य-अन्य तीन वेदों का ज्ञान प्राप्त कर अध्यापन व पढ़ाने का कार्य अवश्य किया होगा। इन ऋषियों के बारे में हमारा वैदिक साहित्य मौन क्यों है, यह रहस्यमय प्रतीत होता है। यहाँ विद्वानों से अपने विवेक से इस समस्या का समाधान अपेक्षित है। एक अन्य प्रश्न भी सामने है। सृष्टि के आदि काल में युवा पुरूषों के समान युवती स्त्रियाँ भी अवश्य उत्पन्न हुई होंगीं। इन्हें भी ब्रह्माजी ने पुत्रीवत् वा भगिनीवत् वेदों का ज्ञान दिया होगा यद्यपि वैदिक परम्परा में स्त्रियों को स्त्रियों से ही ज्ञान प्राप्त करने की परम्परा है, अतः यह अपवाद स्वरूप हुआ प्रतीत होता है, क्योंकि सृष्टि के अमैथुनी होने जैसा यह अपवाद आवश्यक था। ब्रह्माजी से वेदों का ज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात इन स्त्रियों ने स्त्रियों को अध्ययन कराना आरम्भ कर दिया होगा, ऐसी सम्भावना प्रतीत होती है।

इस लेख में हमने वेदों के अविर्भाव पर विचार कर यह जाना है कि ईश्वर से चार ऋषियों को ज्ञान प्राप्त हुआ और उसके पश्चात ब्रह्माजी सहित पाँच ऋषि चतुर्वेदी अर्थात चारों वेदों के ज्ञाता हो गए ईश्वर वेदों का ज्ञान दे सकता है व देता है, इस पर भी विचार किया गया है। हम समझते हैं पाठक व विद्वान् हमारे विचारों पर अपनी सहमति व प्रतिक्रियाओं से अवगत कराएँगें।

पताः 196 चुक्खूवाला ब्लाक-2
देहरादून-248001
फोनः 09412985121

www.thearyasamaj.org

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2012-14
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2012-14
POSTED AT N.D.P.S.O. ON 16-17 /10/2013
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39/57

आर्य समाज, हिरण मगरी, उदयपुर में अथर्ववेद पारायण यज्ञ सम्पन्न

आर्य समाज हिरण मगरी, उदयपुर की ओर से अथर्ववेद पारायण यज्ञ हुआ। जिस के ब्रह्मा मुम्बई से पधारे आचार्य डॉ. सोमदेव शास्त्री थे। वेदपाठी गुरूकुल गौतम नगर दिल्ली के ब्रह्मचारी श्री वेदप्रकाश शास्त्री एवं वेंकटेश शास्त्री ने सुमधुर स्वर में वेदपाठ किया।

आचार्य डॉ. सोमदेव शास्त्री ने यज्ञ अवसर पर अथर्ववेद का भावार्थ, प्रयोजन आदि बताते हुए कहा कि मन की कुटिलताओं से रहित होना ही अथर्व का मुख्य अर्थ है। आपने दस दिनों तक यज्ञ के पश्चात् संध्याकालीन सत्रों में वेद, ईश्वर, जीव, प्रकृति, वेद, सत्यार्थ प्रकाश का महिमा, राष्ट्र भाषा हिन्दी, पाखण्ड व अन्ध विश्वास, सच्चा श्राद्ध, मानव जीवन जीने की कला आदि सामयिक विभिन्न विषयों पर व्याख्यान दिये।

उद्घाटन समारोह के अवसर पर सत्यार्थप्रकाश न्यास के कार्यकारी अध्यक्ष डॉ. श्री अशोक आर्य का सान्निध्य प्राप्त हुआ वहीं समापन अवसर पर शिकागो लोक अमेरिका आर्य समाज के संस्थापक अध्यक्ष कैंसर रोग विशेषज्ञ डॉ. सुखदेव सोनी मुख्य अतिथि थे। संन्यासी प्रवासानन्द जी व आर्यानन्द जी भी इस अवसर पर उपस्थित थे।

आयोजन संयोजक डॉ. अमृतलाल तापडिया ने अतिथियों का स्वागत किया।

गुरु विरजानन्द सरस्वती जी की पुण्य तिथि पर विचार गोष्ठी आयोजित

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि–उपसभा, पंजाब के तत्त्वावधान में डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, भूपिन्द्रा रोड़ पटियाला की इकाई 'आर्य युवा समाज' द्वारा प्रज्ञा चक्षु गुरु विरजानन्द सरस्वती की 145वीं पुण्य तिथि पर विचार गोष्ठी' आयोजित की गई। इस गौष्ठी में 'स्वामी विरजानन्द जी का व्यक्तित्व व कृतित्व', तथा 'गुरु–शिष्य परम्परा' पर प्रकाश डाला गया।

कार्यक्रम का शुभारम्भ पवित्र वेद मन्त्रों के उच्चारण के साथ हवन से हुआ जिसमें सभी शिक्षकवृन्द ने बड़ी श्रद्धा से यज्ञाग्नि में आहुतियाँ डालते हुए गुरु विरजानन्द जी को श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। प्राचार्य एस.आर. प्रभाकर ने अपने सम्बोधन में कहा,''शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति को चरित्रवान् बनाकर उसका सर्वांगिण विकास करना है। यह तभी सम्भव है; जब गुरू अपने शिष्य को पुत्रवत् समझे तथा शिष्य गुरु के प्रति श्रद्धावान हो।''

संगीत अध्यापिका श्रीमति रजनीत कौर ने भक्तिभाव पूर्ण 'तुझमें ओ३म्, मुझमें ओ३म्, सबमें ओ३म् समाया. .।। भजन की प्रस्तुति कर सारे स्कूल परिसर को ओ३म्मय बना दिया। अकस्मात् निकले 'आर्य समाज–अमर रहे','स्वामी विरजानन्द जी की –जय' व 'भारत–माता की जय' के जय घोषों से स्कूल परिसर गूँज उठा।

प्राचार्य प्रभाकर ने सभी शिक्षकवृन्द को स्वामी विरजानन्द जी के जीवन से प्रेरणा लेकर ऋषि ग्रन्थों का स्वाध्याय करने के लिए प्रेरित किया। इस अवसर पर डॉ. रमेश पुरी, आर्य समाज के सदस्य व नगर के अनेक गणमान्य व्यक्ति उपस्थित रहे। सभी वक्ताओं को 'युग–द्रष्टा, युग–स्रष्टा' स्वामी दयानन्द सरस्वती C.D वैदिक साहित्य के साथ पुरस्कार स्वरूप प्रदान किये।

शान्ति पाठ के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल द्वारका में हिंदी दिवस

छात्रों में अपनी भाषा के प्रति सम्मान व प्रेम जागृत करने के लिए डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल द्वारका में हिंदी दिवस मनाया गया। डी.ए.वी. परम्परा को निभाते हुए विद्यालय नित नए ज्ञान विज्ञानों के साथ–साथ हिंदी भाषा के उत्थान व विकास के लिए कटिबद्ध है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विद्यालय में समय पर प्रसिद्ध कवि तथा लेखकों की जयंतियां मनाई जाती हैं। इस वर्ष अगस्त महीने में (श्रावण शुक्ला सप्तमी) तुलसी जयंती का आयोजन किया गया। इस अवसर पर भक्तिकालीन कविता प्रतियोगिता, सामान्य कविता प्रतियोगिता तथा पोस्टर बनाओ कविता का आयोजन किया गया। इन प्रतियोगिताओं में विजयी छात्र छात्राओं को हिंदी दिवस (14 सितम्बर) के शुभ अवसर पर सम्मानित किया गया। विद्यालय की प्रधानाचार्या श्रीमती मोनिका मेहन ने छात्रों को प्रशस्तिपत्र देकर सम्मानित किया। कार्यक्रम में विभिन्न प्रतियोगिताओं में प्रथम आए छात्रों ने अपनी–अपनी प्रस्तुति दी। कार्यक्रम के अंत में प्रधानाचार्या ने हिंदी भाषा के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए सभी छात्र–छात्राओं को अपने आशीर्वचनों से प्रोत्साहित किया।

मुद्रक व प्रकाशक – श्री प्रबोध महाजन, सभा मंत्री द्वारा मदन गोयल के प्रबंध में अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि., डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित कार्यालय 'आर्य जगत्' आर्यसमाज भवन, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 से प्रकाशित। स्वामित्व – आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 (दूरभाष : 23362110, 23360059) सम्पादक – श्री पूनम सूरी